

## सप्तशतक

प्रथम शतक/दोहा शतक

( दोहा )

राग-द्वेष से रहित जो, जाने लोकालोक।  
ज्ञानानन्दी पुरुष को, नमकर दूँ मैं धोक॥ १॥  
कैसे होंगे वे पुरुष, यह चिन्तन की बात।  
उनके स्वरूप पर बन्धुवर, करते हैं कुछ बात॥ २॥  
जब न किसी से राग है, जब न किसी से द्वेष।  
सबसे समताभाव है, है न कोई विशेष॥ ३॥  
पर में कुछ भी करन का, भाव नहीं है रंच।  
इस कारण उन पुरुष के, है न कोई परपंच॥४॥  
जब न किसी परद्रव्य में, अपनेपन का भाव।  
फिर उसमें कुछ करन का, कैसे होगा भाव?॥ ५॥  
सब द्रव्यों का परिणमन, कब क्या कैसा होय?  
जब यह उनके ज्ञान में, सब कुछ आया होय॥ ६॥  
फेरफार सम्भव नहीं, यह भी जाना होय।  
फिर तो बदलाबदल का, भावहि कैसे होय॥ ७॥  
एक तो सम्भव है नहीं, यदि सम्भव भी होय।  
तो भी रागादिक बिना, कुछ विकल्प क्यों होय॥ ८॥

रागादिक के अभाव में, कुछ विकल्प न होंय।  
 जब विकल्प भी हैं नहीं, फिर कुछ कैसे होय?॥ १॥  
 वीतराग-सर्वज्ञ के, कुछ करने के भाव।  
 अरे कभी होते नहीं, यह है वस्तुस्वभाव॥ १०॥  
 सब गुण-पर्यायों सहित, सभी द्रव्य स्वयमेव।  
 झलकें जिनके ज्ञान में, वे सर्वज्ञ जिनेश॥ ११॥  
 भूतकाल में जो हुआ, अर भविष्य में होय।  
 सारे लोकालोक में, नित्य झलकता होय॥ १२॥  
 सारे जग का परिणमन, सहज झलकता होय।  
 जानन-देखन भाव की, आकुलता क्यों होय?॥ १३॥  
 जो कुछ जैसा परिणमें, सभी सहज स्वीकार।  
 फेरफार की बुद्धि फिर, क्यों लेवे आकार?॥ १४॥  
 ना कोई अनुकूल है, ना कोई प्रतिकूल।  
 राग-द्वेष की कल्पना, पूरी तरह फिजूल॥ १५॥  
 परद्रव्यों में आज तक, किया न कुछ भी रंच।  
 कुछ भी कर सकते नहीं, करें व्यर्थ परपंच॥ १६॥  
 दो द्रव्यों के बीच में, है अत्यन्त अभाव।  
 वीतराग-सर्वज्ञ जिन की वाणी का भाव॥ १७॥  
 पर में माथा मारना, अज्ञानी का कर्म।  
 रंचमात्र भी है नहीं, इसमें कर्म न धर्म॥ १८॥  
 पुण्य-पाप के भाव तो, एक मात्र हैं कर्म।  
 एक मात्र इस लोक में, वीतरागता धर्म॥ १९॥

सब जन अपनी भूल से, दुःखी जगत में होंय।  
 अपनी भूल सुधार कर, सुखी सभी जन होंय॥ २०॥  
 पर पदार्थ में अपनपन ही पहाड-सी भूल।  
 जब तक यह मिटती नहीं, मिटे न कोई भूल॥ २१॥  
 इस पहाड-सी भूल को, कहते हैं मिथ्यात्व।  
 अपने में ही अपनपन को कहते सम्यक्त्व॥ २२॥  
 अपना आतम अपन हैं, जो अपने से भिन्न।  
 उनको ही पर जानिये, उनसे अपन हैं भिन्न॥ २३॥  
 परपदार्थ तो परहि हैं, पर पर में अपनत्व।  
 उसको भी पर जानिये, वह एकत्व-ममत्व॥ २४॥  
 वह एकत्व-ममत्व ही, है पर में अपनत्व।  
 अध्यातम में उसे ही, कहते हैं मिथ्यात्व॥ २५॥  
 अपने में ही जन्मते, राग-द्वेष-मिथ्यात्व।  
 अपनी ही पर्याय हैं, पर आतम से अन्य॥ २६॥  
 उनको भी पर जानिये, वे हैं आस्रव तत्त्व।  
 ज्ञानीजन करते नहीं, उनमें भी अपनत्व॥ २७॥  
 दृष्टि का जो विषय है, और ध्यान का ध्येय।  
 परमशुद्धनय का विषय, परम पदारथ ज्ञेय॥ २८॥  
 आतम कहते हैं उसे, उसमें ही अपनत्व।  
 सम्यग्दर्शन-ज्ञान हैं, अर सम्यक्चारित्र॥ २९॥  
 सर्वज्ञों की बात यह, कही जिनागम माँहि।  
 यह मुक्ति का मार्ग है, ज्ञानीजन समुझाँहि॥ ३०॥

पर्यायों से पार मैं, गुणभेदों से भिन्न ।  
 पर्यायें तो अंश हैं, मैं हूँ अंशी द्रव्य॥ ३१॥  
 परमभावग्राही अरे, जो द्रव्यार्थिक होय।  
 उस नय का जो विषय है, वही द्रव्य 'मैं' होय॥ ३२॥  
 द्रव्य तत्त्व तो दो हि हैं, जो हैं जीव-अजीव।  
 शेष सभी जो तत्त्व हैं, वे पर्याय सदीव॥ ३३॥  
 आस्रव-संवर-निर्जरा, एवं पाप अरु पुण्य।  
 बन्ध-मोक्ष इन सभी को, कहते पर्यय तत्त्व॥ ३४॥  
 पर्यय तत्त्वों से पृथक्, अर अजीव से भिन्न।  
 परजीवों से भी पृथक्, मैं हूँ आतम तत्त्व॥ ३५॥  
 बाकी तत्त्वों से पृथक्, परजीवों से भिन्न।  
 ज्ञानानन्दी जीव मैं, मैं कारणपरमात्म॥ ३६॥  
 इस कारणपरमात्म में, जब अपनापन होय।  
 सम्यग्दर्शन-ज्ञानमय, तब यह आतम होय॥ ३७॥  
 करे न बोले और जब, चिन्तन भी न होय।  
 ज्ञान ज्ञान में थिर रहे, यही ध्यान है सोय॥ ३८॥  
 निर्विकल्प यह ध्यान है, ना है कोई विकल्प।  
 शेष अवस्थायें सभी, होती हैं सविकल्प॥ ३९॥  
 देखो जानो स्वयं को, सहज जानना होय।  
 देखन-जानन क्रिया सब, सहज भाव से होय॥ ४०॥

3

चित्त रहे आनन्दमय, सहज शान्त परिणाम।  
 सहज समाधि लोक में, है इसका ही नाम॥ ४१॥  
 सामायिक भी है यही, यही शुद्ध उपयोग।  
 परम धर्म भी है यही, योगिजनों का योग॥ ४२॥  
 यह ही निश्चय भक्ति है, यह ही है संन्यास।  
 आत्मरमणता भी यही, यह ही ज्ञानाभ्यास<sup>१</sup>॥ ४३॥  
 यह सब होता है सहज, होनहार अनुसार।  
 काललब्धि भी सहज ही, होय समय अनुसार॥ ४४॥  
 पुरुषार्थ भी सहज ही, हो स्वभाव अनुसार।  
 निमित्त सहज ही प्राप्त हों, कारज के अनुसार॥ ४५॥  
 पाँचों ही समवाय का, सहज समागम होय।  
 सहजभाव से सहज ही, आतम अनुभव होय॥ ४६॥  
 आतम के अनुभवी का, जब बाहर उपयोग।  
 शुद्ध भाव होता नहीं, होता शुभ उपयोग॥ ४७॥  
 जैसा हो निश्चय धरम, वैसा ही व्यवहार।  
 उसके ही अनुसार हों, सब आचार-विचार॥ ४८॥  
 ज्ञानीजन का आचरण, और सभी व्यवहार।  
 खान-पान सभ्याचरण, आगम के अनुसार॥ ४९॥  
 निश्चय अर व्यवहार में, होय अपूरब योग।  
 जैसे अन्तर भाव हों, वैसे ही संयोग॥ ५०॥

१. द्रव्यसंग्रह गाथा ५६ की संस्कृत टीका देखें।

निज आतम के अनुभवी, निश्चय सम्यग्दृष्टि।  
 हों चौथे गुणथान में, अविरत सम्यग्दृष्टि॥ ५१॥  
 आतम अनुभव के बिना, सम्यग्दर्श न होय।  
 सम्यग्दर्शन के बिना, सम्यग्ज्ञान न होय॥ ५२॥  
 सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिन, संयम कैसे होय?।  
 संयम ही चारित्र है, वह भी कैसे होय?॥ ५३॥  
 इन तीनों की एकता ही है मुक्तिमार्ग।  
 इन तीनों की पूर्णता को ही कहते मुक्ति॥ ५४॥  
 पहला आतम तत्त्व है, अन्तिम मुक्ति तत्त्व।  
 जिन-आगम से जानिये, और न कोई युक्ति॥ ५५॥  
 जिन-आगम अभ्यास ही, तीन लोक में सार।  
 उसके ही अभ्यास से, होंगे भव से पार॥ ५६॥  
 भव दुःखों से भव्यजन, यदि होना है पार।  
 जिन-आगम अभ्यास ही, एकमात्र आधार॥ ५७॥  
 जिन-आगम अभ्यास बिन, तत्त्वज्ञान न होय।  
 तत्त्वों के अभ्यास बिन, सम्यग्दर्श न होय॥ ५८॥  
 जिन-आगम जिनदेव की, दिव्यध्वनि का सार।  
 जिन-आगम में आ गया, नव तत्त्वों का सार॥ ५९॥  
 नव तत्त्वों की ज्योति में, छुपा जो आतम तत्त्व।  
 वह ही हूँ 'मैं' जान लो, यह अध्यात्म रहस्य॥ ६०॥

अध्यातम का यह रहस्य, जिन शास्त्रों में होय।  
 उनको परमागम कहें, उनका ही उपयोग॥ ६१॥  
 उपयोगी हे भव्यजन !, उनका सद्-उपयोग।  
 शेष सभी तो जानिये, बन्ध-भोग-उपभोग॥ ६२॥  
 बन्ध-भोग-उपभोग की, कथा अनन्ती बार।  
 सुनी सुनाई जगत को, उसमें कोई न सार॥ ६३॥  
 परम शुद्ध अध्यात्म की, कथा है मंगल रूप।  
 आत्मतत्त्व प्रतिपादनी, अद्भुत और अनूप॥ ६४॥  
 समयसारमय आतमा का एकत्व-विभक्त।  
 जिसमें प्रस्तुत किया हो, वह ही है अध्यात्म॥ ६५॥  
 अधि माने है जानना, आतम माने आत्म।  
 आतम का ही जानना, कहलाता अध्यात्म॥ ६६॥  
 जिसमें आतम की कथा, वह अध्यातम होय।  
 इस अध्यातम की कथा, परमागम में होय॥ ६७॥  
 परमशुद्धनय का विषय, परमभावमय होय।  
 वह शुद्धातम आतमा, जीव तत्त्व है सोय॥ ६८॥  
 वह ज्ञायक परमात्मा, उसको कहते शुद्ध।  
 क्योंकि वह न प्रमत्त है, और न है अप्रमत्त॥ ६९॥  
 दर्शन-ज्ञान-चरित्र के, भेदरूप वह नाहिं।  
 वह तो एक अभेद है, ज्ञायकभाव कहाँहि॥ ७०॥

वह ज्ञायक परमात्मा, एकमात्र श्रद्धेय।  
 परम ज्ञेय भी है वही, वही ध्यान का ध्येय॥ ७१॥  
 शेष सभी द्रव ज्ञेय हैं, हेय हैं आस्रव-बंध।  
 पुण्य-पाप भी हेय हैं, शेष सभी आदेय<sup>१</sup>॥ ७२॥  
 एकदेश आदेय हैं, संवर-निर्जर तत्त्व।  
 पर पूरण आदेय है, मोक्ष तत्त्व सुन भव्य॥ ७३॥  
 सब से दृष्टि हटाकर, इक निज आतम माँहि।  
 अपनापन कर भव्यजन, रमो जमो उस माँहि॥ ७४॥  
 सम्यग्दर्शन-ज्ञान अर, चरण आतमा माँहि।  
 इस पर चलकर भव्यजन, जावें मुक्ति माँहि॥ ७५॥  
 यह ही मुक्तिमार्ग है, इससे मुक्ति होय।  
 और सभी व्यवहार हैं, उनसे मुक्ति न होय॥ ७६॥  
 अतः एव हे भव्यजन ! एक आतमा माँहि।  
 अपनापन धारण करो, अन्य किसी में नाहि॥ ७७॥  
 अपने में अपनत्व तो, होता है सम्यक्त्व।  
 अर पर में अपनत्व ही, होता है मिथ्यात्व॥ ७८॥  
 सम्यग्दर्शन-ज्ञान अर, अर सम्यक्चारित्र।  
 तीनों में सम्यक्पना, तीनों हैं सम्यक्त्व॥ ७९॥  
 मिथ्यादर्शन-ज्ञान अर, अर मिथ्याचारित्र।  
 तीनों में मिथ्यापना, तीनों हैं मिथ्यात्व॥ ८०॥

दर्शन का सम्यक्पना, जिसप्रकार सम्यक्त्व।  
 वैसे ही है ज्ञान का, सम्यक्पन सम्यक्त्व॥ ८१॥  
 इसीतरह चारित्र का, सम्यक्पन सम्यक्त्व।  
 तीनों के सम्यक्पने को कहते सम्यक्त्व॥ ८२॥  
 तीनों के सम्यक्त्व को, कहते सम्यक्भाव।  
 तीनों के मिथ्यात्व को, कहते मिथ्याभाव॥ ८३॥  
 इस बारे में आपको, यदी जानना होय।  
 मोक्षमार्गपरकाश<sup>१</sup> में देखो भविजन लोय !॥ ८४॥  
 लगभग हर अधिकार का, देखो तुम आरम्भ।  
 यही भाव मिल जायेगा, करो उन्हें प्रारम्भ॥ ८५॥  
 अपने और पराये की, करना यदि पहिचान।  
 करना होगा आपको, स्व-पर भेदविज्ञान॥ ८६॥  
 स्व-पर भेदविज्ञान बिन, आतम की पहिचान।  
 करना सम्भव है नहीं, करो भेदविज्ञान॥ ८७॥  
 स्व-पर भेदविज्ञान ही, जिनदर्शन का मूल।  
 स्व-पर भेद जाने बिना, मिटे न भव का शूल॥ ८८॥  
 भेदज्ञान के बिना जो, अबतक हैं मझधार।  
 भेदज्ञान से ही सभी, भवि होंगे भव-पार॥ ८९॥  
 भवसागर को पार कर, पाना है भव-अन्त।  
 भेदज्ञान की भावना, आवश्यक अत्यन्त॥ ९०॥

सिद्ध हुये हैं आज तक, अर भविष्य में होंग।  
 और हो रहे हैं अभी, भेदज्ञान से होंग॥ ९१॥  
 यदि जाना है मोक्ष तो, करो भेदविज्ञान।  
 मुक्ति होगी ही नहीं, बिना भेदविज्ञान॥ ९२॥  
 अपने और पराये की, यदि न हो पहिचान।  
 फिर कैसे होगा कहो, हमसे अपना ध्यान॥ ९३॥  
 यदि करना है भव्यजन ! तुमको अपना ध्यान।  
 तो सबसे पहले करो, तुम अपनी पहिचान॥ ९४॥  
 अपने को पहिचान कर, अपने में अपनत्व।  
 अपने में रुचिपूर्वक, अपने में एकत्व॥ ९५॥  
 सम्यक्-मिथ्याभाव की, हो सम्यक् पहिचान।  
 तब ही आतमतत्त्व का, होगा सम्यग्ज्ञान॥ ९६॥  
 आतम अर देहादि में, ना भासे भिन्नत्व।  
 आतम का देहादि से, ना छूटे अपनत्व॥ ९७॥  
 जब तक आतमराम में, न आवे अपनत्व।  
 तब तक दिल्ली दूर है, ना होवे सम्यक्त्व॥ ९८॥  
 अपनी दिल्ली मोक्ष है, यदि जाना हो मोक्ष।  
 अपने को अपनाइये, अपने में ही मोक्ष॥ ९९॥  
 पहला आतम तत्त्व है अर अन्तिम है मोक्ष।  
 और अनन्तानन्दमय आतम ही है मोक्ष॥ १००॥

## द्वितीय शतक/रोला शतक

( रोला )

अपने में एकत्व और पर से विभक्तता।  
 इसको कहते हैं एकत्व-विभक्त आतमा॥  
 यह एकत्व-विभक्त आतमा समयसार में।  
 समझाया है कुन्दकुन्द आचार्यदेव ने॥ १॥  
 अनन्त गुणों एवं असंख्य परदेशों की यह।  
 और अनन्तानन्त त्रिकाली पर्यायों की॥  
 पूरी अखण्डता ही है रे एकत्व हमारा।  
 परद्रव्यों से अरे भिन्नता ही विभक्तता॥ २॥  
 इस एकत्व-विभक्त आतमा का आराधन।  
 ज्ञान-ध्यान-श्रद्धान यही है इसका साधन॥  
 ज्ञान-ध्यान-साधन-आराधन कुछ भी कह लो।  
 यह ही सच्चा मोक्षमार्ग है यही समझ लो॥ ३॥  
 यह एकत्व-विभक्त आतमा परद्रव्यों का।  
 स्वामी-कर्ता-भोक्ता कैसे हो सकता है?॥  
 यह असीम आतम अपने में ही सीमित है।  
 इसीलिए तो सीमन्धर कहते हैं इसको॥ ४॥

अपने में सीमित होकर भी यह शुद्धात्म।  
 है असीम ज्ञेयों का ज्ञायक यह परमात्म॥  
 यह अपार ज्ञेयों के पार को पा लेता है।  
 इसकी गौरव गरिमा का न आर-पार है॥ ५॥

यद्यपि जाने सभी द्रव्य-गुण-पर्यायों को।  
 पर उनमें कुछ भी कर सकता नहीं आतमा॥  
 कर्त्ता-भोक्ता सभी द्रव्य हैं अपने-अपने।  
 स्वामी भी हैं सभी द्रव्य बस अपने-अपने॥ ६॥

जाने जाते सभी द्रव्य इस आत्मद्रव्य से।  
 अरे एक गुण ऐसा भी है सब द्रव्यों में॥  
 प्रमेयत्वगुण कहते हैं उसको श्रीजिनवर।  
 उसके कारण सभी द्रव्य जाने जाते हैं॥ ७॥

अरे ज्ञान से जाने सबको यह परमात्म।  
 प्रमेयत्व से सभी द्रव्य जाने जाते हैं॥  
 अरे ज्ञान है अतः जानता है यह आतम।  
 प्रमेयत्व है अतः आतमा जाना जाता॥ ८॥

शेष सभी में ज्ञान नहीं है नहीं जानते।  
 प्रमेयत्व से केवल वे जाने जाते हैं॥  
 अतः जानना लक्षण है चेतन आतम का।  
 चेतनता ही चेतन की गौरव गरिमा है॥ ९॥

7

अरे चेतना दो प्रकार की होती जग में।  
 अज्ञानचेतना ज्ञानचेतना के भेदों से॥  
 अज्ञानचेतना भी होती है दो प्रकार की।  
 कर्मचेतना और कर्मफल<sup>१</sup> के भेदों से॥ १०॥

पर के करने-धरने में ही अरे चेतना।  
 कर्मचेतना कहलाती है कर्त्तापन से॥  
 और कर्म के फल में ही रत रहना भाई !  
 अरे कर्मफल कहलाती है भोक्तापन से॥ ११॥

पर का कर्त्ता-भोक्तापन अज्ञानचेतना।  
 ज्ञाता-दृष्टा रहना ही है ज्ञानचेतना॥  
 ज्ञानचेतना मुक्ति है मुक्ति का मग है।  
 अज्ञानचेतना भव का कारण कही गई है॥ १२॥

अपने आतम में अपनापन ज्ञानचेतना।  
 आतम में ही जमना-रमना ज्ञानचेतना॥  
 अरे आतमा का अनुभव है ज्ञानचेतना।  
 सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण है ज्ञानचेतना॥ १३॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचरण मुक्ति का मग है।  
 और स्वयं में अपनापन ही सम्यग्दर्शन॥  
 स्वपरभेदविज्ञान हि सम्यग्ज्ञान कला है।  
 सम्यक्चारित्र एकमात्र अकषायभाव है॥ १४॥

१. कर्मफलचेतना

आत्मध्यान में ही पैदा होते हैं तीनों।  
 सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण निश्चय से जानो॥  
 तीनों ही हैं आत्मरूप<sup>१</sup> भूतार्थ बात यह।  
 शेष सभी हैं अभूतार्थ व्यवहार बखानो॥ १५॥

निश्चय अरु व्यवहार मुक्तिमग दोनों ही तो।  
 आत्मध्यान में ही तो रे पैदा होते हैं॥  
 अतः ध्यान ही निज आतम का अरे निरन्तर।  
 करना है कर्तव्य कहा है ज्ञानिजनों ने॥ १६॥<sup>२</sup>

परमशुद्धनिश्चयनय का है विषयभूत जो।  
 उस आतम में अपनापन है सम्यग्दर्शन॥  
 और उसे निजरूप जानना ज्ञान कहा है।  
 तथा उसी में जमना-रमना ध्यान कहा है॥ १७॥

सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान अरु ध्यान धरम है।  
 शुद्धातम का ध्यान धरम का परम मरम है॥  
 अरे ध्यान के पहले उसका ज्ञान जरूरी।  
 और ज्ञान के साथ विमल श्रद्धान जरूरी॥ १८॥

अरे ज्ञान-श्रद्धान बिना न ध्यान कभी हो।  
 ज्ञान-ध्यान-श्रद्धा बिन न कल्याण कभी हो॥  
 यदि करना कल्याण आतमा का हे भाई !  
 ज्ञान-ध्यान-श्रद्धान करो आतम का भाई॥ १९॥

१. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय - २२, ३५, ३९

२. बृहद्द्रव्यसंग्रह, गाथा - ४७

ज्ञान-ध्यान-श्रद्धान आत्मा के आश्रय से।  
 होते हैं तो निज आतम पहिचान करो तुम॥  
 जिन-आगम के आश्रय से अरु सदुपदेश से।  
 करो प्रमाणित उसे आत्मा के अनुभव से॥ २०॥

तनरूपी मन्दिर में है भगवान आतमा।  
 तन जड़ है पर चेतन है भगवान आतमा॥  
 यद्यपि वे हैं एकक्षेत्र-अवगाही किन्तु।  
 फिर भी वे हैं पृथक्-पृथक्-जिन ऐसा कहते॥ २१॥

रे परमातम देव विराजे मनमन्दिर में।  
 एवं आतमदेव विराजे तनमन्दिर में॥  
 मनमन्दिर के देव सातिशय पुण्य बन्धावें।  
 तनमन्दिर के देव हमें शिवपुर पहुँचावें॥ २२॥

मनमन्दिर के देव परमप्रिय परमातम हैं।  
 तनमन्दिर का देव हमारा ही आतम है॥  
 परमातम के चरणों में अति भक्तिभाव से।  
 करता हूँ मैं सत् श्रद्धा के सुमन समर्पित॥ २३॥

अपने में अपनेपन की महिमा अद्भुत है।  
 अपने में अपनापन करता हूँ मैं अर्पित॥  
 अधिक कहूँ क्या हे परमातम ! निज आतम में।  
 अपनेपन से हो जाता हूँ पूर्ण समर्पित॥ २४॥



स्व-पर भेदविज्ञान धर्म का मूल तत्त्व है ।  
 इसे प्राप्त कर भव्यजीव निज आतम पाते ॥  
 निज आतम में अपनापन स्थापित कर वे ।  
 निज आतम के ज्ञान-ध्यान में थिर हो जाते ॥ २५ ॥

बाँटो तुम दो भागों में सारी दुनियाँ को ।  
 छाँटो फिर अपना आतम जो ज्ञानस्वभावी ॥  
 ज्ञानतत्त्व अर ज्ञेयतत्त्व दो रूप जगत है ।  
 ज्ञानस्वभावी आतम बाकी ज्ञेयतत्त्व हैं ॥ २६ ॥

ज्ञान ज्ञेय - दोनों बातें हैं आत्मतत्त्व में ।  
 सभी अनातम भाव अकेले ज्ञेय भाव हैं ॥  
 पर ज्ञेयों से भिन्न आतमा ज्ञानस्वभावी ।  
 परम तत्त्व निज आतम ज्ञानानन्द स्वभावी ॥ २७ ॥

अरे देह में रहकर भी यह देह नहीं है ।  
 यद्यपि इसमें राग किन्तु यह राग नहीं है ॥  
 पर्यायों से पार आतमा ज्ञान पिण्ड है ।  
 गुणभेदों से भिन्न प्रभु अति ही प्रचण्ड है ॥ २८ ॥

अरे ज्ञानघनपिण्ड आतमा निर्विकल्प है ।  
 आनन्द का रसकन्द आतमा परमतत्त्व है ॥  
 निर्विकल्प यह जीव विकल्पों में नहीं आता ।  
 आतम अनुभवगम्य अतः अनुभव में आता ॥ २९ ॥

9

करो भावना अरे निरन्तर भेदज्ञान की ।  
 भेदज्ञान की महिमा में नित चित्त लगाओ ॥  
 अविरल धारा बहे ज्ञान में भेदज्ञान की ।  
 भव्य भावना रहे ध्यान में भेदज्ञान की ॥ ३० ॥

भेदज्ञान के इस अविरल धारा प्रवाह से ।  
 कैसे भी कर प्राप्त करे जो शुद्धातम को ॥  
 और निरन्तर उसमें ही थिर होता जावे ।  
 पर परिणति को त्याग निरन्तर शुध हो जावे ॥ ३१ ॥

भेदज्ञान की शक्ति से निजमहिमा रत को ।  
 शुद्धतत्त्व की उपलब्धि निश्चित हो जावे ॥  
 शुद्धतत्त्व की उपलब्धि होने पर उसके ।  
 अतिशीघ्र ही सब कर्मों का क्षय हो जावे ॥ ३२ ॥

आत्मतत्त्व की उपलब्धि हो भेदज्ञान से ।  
 आत्मतत्त्व की उपलब्धि से संवर होता ॥  
 इसीलिए तो सच्चे दिल से नितप्रति करना ।  
 अरे भव्यजन! भव्यभावना भेदज्ञान की ॥ ३३ ॥

अरे भव्यजन! भव्यभावना भेदज्ञान की ।  
 सच्चे मन से बिन विराम के तब तक भाना ॥  
 जब तक पर से हो विरक्त यह ज्ञान ज्ञान में ।  
 ही थिर न हो जाय अधिक क्या कहें जिनेश्वर ॥ ३४ ॥

अब तक जो भी हुए सिद्ध या आगे होंगे ।  
 महिमा जानो एक मात्र सब भेदज्ञान की ॥  
 और जीव जो भटक रहे हैं भवसागर में ।  
 भेदज्ञान के ही अभाव से भटक रहे हैं ॥ ३५ ॥

भेदज्ञान से शुद्धतत्त्व की उपलब्धि हो ।  
 शुद्धतत्त्व की उपलब्धि से रागनाश हो ॥  
 रागनाश से कर्मनाश अरु कर्मनाश से ।  
 ज्ञान ज्ञान में थिर होकर शाश्वत हो जावे ॥ ३६ ॥

मुक्तिमार्ग यह बतलाया अरहन्त देव ने ।  
 यह उपलब्ध सदा हमको है जिनवाणी में ॥  
 गहराई से पढ़ें मनन चिन्तन कर समझें ।  
 समझ न आवे तो ज्ञानी गुरुओं से समझें ॥ ३७ ॥

मुक्तिमार्ग के नेता ज्ञाता विश्व तत्त्व के ।  
 वस्तु का स्वरूप समझाते दिव्यध्वनि से ॥  
 हित उपदेशक अनेकान्त के स्याद्वाद के ।  
 परम वीतरागी होते अरहन्तदेव हैं ॥ ३८ ॥

अनेकान्तमय सप्त तत्त्व की प्रतिपादक अर ।  
 वीतरागता की पोषक जो जिनवर वाणी ॥  
 परम अहिंसक सदाचार की भी पोषक जो ।  
 अरिहन्तों की दिव्यध्वनि वह जिनवाणी है ॥ ३९ ॥

हर अन्तर्मुहुर्त्त में जो अन्तर्मुख होते ।  
 महा तपस्वी परम अहिंसक महाव्रती जो ॥  
 नय-प्रमाण के विशेषज्ञ हैं शान्तचित्त हैं ।  
 ऐसे अद्भुत नग्न दिगम्बर जैन गुरु हैं ॥ ४० ॥

ऐसे देव-शास्त्र-गुरु एवं नव तत्त्वों के ।  
 श्रद्धानी श्रावक होते हैं सम्यग्दृष्टि ॥  
 यह व्यवहार कथन है लेकिन निश्चय से तो ।  
 आतम के अनुभवी जीव हैं सम्यग्दृष्टि ॥ ४१ ॥

देहादिक परद्रव्यों में अपनापन जिनके ।  
 रागादि विकारी भावों में भी अपनापन है ॥  
 पर्यायों में रमे रहें अपनापन करके ।  
 मिथ्यादृष्टि जीव डूबते भवसागर में ॥ ४२ ॥

करणलब्धि में एक साथ पैदा होते हैं ।  
 निश्चय दर्शन-ज्ञान-चरित तीनों ही निश्चित ॥  
 पूरण होते हैं क्रमशः यह बात अलग है ।  
 पर पैदा होते हैं वे तो एक साथ ही ॥ ४३ ॥

करणलब्धि भी ध्यान रूप है सब जग जानें ।  
 कर्मनाश आरम्भ यहीं से होता भाई ॥  
 मिथ्यात्वकर्म के साथ अनन्त-अनुबन्धी का भी ।  
 तो अभाव भी इसी अवस्था में होता है ॥ ४४ ॥

आत्मज्ञान अर आत्मध्यान ही परम धरम हैं।  
 इनसे ही भव का अभाव होता है भाई॥  
 भव्यजीव इनके बल पर भवसागर तरते।  
 अधिक कहें क्या भवसागर से पार उतरते॥ ४५॥

अतः आत्मा को जानों उसमें जम जावो।  
 सहज जानना होने दो उसमें रम जावो॥  
 अरे जानने का तनाव मत करो बन्धुवर !।  
 सहज जानना सहज भाव से ही होने दो॥ ४६॥

सहज जानने का विकल्प भी नहीं करो तुम।  
 पार पड़ेगी नहीं विकल्पों से हे भाई !॥  
 क्योंकि विकल्पातीत कहा भगवान आत्मा।  
 विकल्पजाल में वह कैसे आ सकता भाई?॥ ४७॥

सहज ज्ञान को सहजभाव से ही होने दो।  
 सहज ध्यान को सहजभाव से ही होने दो॥  
 ज्ञान-ध्यान में सहज सहजता ही होती है।  
 रंचमात्र असहज होने का काम नहीं है॥ ४८॥

असहज होना चिन्तित होने जैसा ही है।  
 एवं चिन्ता के निरोध को ध्यान कहा है॥  
 चिन्तन भी तो चिन्ता का ही एक रूप है।  
 अतः ध्यान में चिन्तन का भी तो निरोध है॥ ४९॥

सहज जानना और जानते रहना केवल।  
 सहज भाव में ज्ञान ज्ञान बस ज्ञान-ज्ञान है॥  
 अरे जानना ज्ञान जानते रहना भाई !।  
 ज्ञानभाव की पुनरावृत्ति सहज ध्यान है॥ ५०॥

प्रतीसमय का ज्ञेय ज्ञान का निश्चित ही है।  
 और ज्ञान का उसमें ही स्थिर हो जाना॥  
 शान्त भाव से अरे एकदम शान्त भाव से।  
 उसमें ही जम जाना एकदम थिर हो जाना॥ ५१॥

यह थिरता ही ध्यान कही जाती है भाई !।  
 इसकी ही महिमा अपार है पार नहीं है॥  
 यह है वचनातीत विकल्पातीत कही है।  
 यह शब्दों में कही नहीं जा सकती भाई !॥ ५२॥

यह प्रयत्न से साध्य नहीं है सहज साध्य यह।  
 सहज साध्य ही इसे कहा है जिनशासन में॥  
 आगे भी तो सहज भाव में ही रहना है।  
 यहाँ यत्न की आकुलता में क्यों रहते हो?॥ ५३॥

आकुलता का मार्ग नहीं है जिनशासन यह।  
 इसमें आकर भी क्यों तुम व्याकुल होते हो?॥  
 व्याकुलता से बचने को इसमें आये हो।  
 फिर भी क्यों इतने भारी व्याकुल होते हो?॥ ५४॥

मुक्ति में तो अनन्तकाल तक सहज रहोगे।  
 मुक्तिमार्ग में भी तुम क्यों व्याकुल होते हो?॥  
 आकुलता-व्याकुलता तो केवल दुःखमय है।  
 वह मुक्तिमार्ग में कैसे हो सकती है?॥ ५५ ॥

मुक्ति अर मुक्तिमग दोनों ही सुखमय हैं।  
 अर भगवान आतमा भी आनन्दस्वभावी॥  
 अरे ज्ञान का पिण्ड और सुखकन्द आतमा।  
 अनन्त गुणों का गोडाउन भगवान आतमा॥ ५६ ॥

अरे त्रिकाली ध्रुव है यह भगवान आतमा।  
 असंख्यात परदेशी अनादि-अनन्त आतमा॥  
 इसके ही आश्रय से मुक्तिमार्ग पनपता।  
 इसका दर्शन-ज्ञान-चरित मुक्तिमार्ग है॥ ५७ ॥

दर्शन-ज्ञान-चरण की पूरणता मुक्ति है।  
 शान्त निराकुलभाव निरन्तर ही रहता है॥  
 सहजभाव ही मुक्ति का सच्चा स्वरूप है।  
 असहजता तो सदा अरे संसाररूप है॥ ५८ ॥

अरे अशुद्धि तो आस्रव है बन्धरूप है।  
 शुद्धि की उत्पत्ति को संवर कहते हैं॥  
 अर शुद्धि की वृद्धि तो निर्जरा तत्त्व है।  
 अर शुद्धि की पूरणता को मोक्ष कहा है॥ ५९ ॥

12

आनन्द का रसकन्द ज्ञान का पिण्ड मोक्ष है।  
 अनन्त वीर्य का धनी चण्ड परचण्ड मोक्ष है॥  
 अरे अनन्तानन्त गुणों का पिण्ड मोक्ष यह।  
 सादी फिर भी रहे अनन्तानन्त काल तक॥ ६० ॥

यह सब होगा सहज एकदम सहज समझ लो।  
 मुक्ति का तो मार्ग एकदम सहज सरल है॥  
 जब तक तुम न हुये सहज तब तक ही समझो।  
 तब तक गोते खाते रहना भवसागर में॥ ६१ ॥

भवसागर में गोते खाना इष्ट नहीं हो।  
 तो तुम सभी परिणामन को ही सहज समझलो॥  
 अरे आज तक कुछ भी असहज नहीं हुआ है।  
 जो कुछ होता सभी सहज ही तो होता है॥ ६२ ॥

चौबीसों तीर्थकर का यह कथन समझलो।  
 सौ इन्द्रों की उपस्थिति में कहा गया है॥  
 जिनवाणी में जगह-जगह पर यह फरमाया।  
 आँख खोलकर देखो तो सब जगह मिलेगा॥ ६३ ॥

काललब्धि के आने पर ही हाथ लगेगा।  
 और पाँच समवायों के बिन काम न होगा॥  
 एक बार तुम निर्विकल्प होकर के भाई!  
 सहजभाव से स्वयं समझ करके तो देखो॥ ६४ ॥

मुक्तिमार्ग में आये तो भी बोझा लेकर।  
 क्रियाकाण्ड का बोझा माथे पर धारण कर॥  
 सारे जग की सभी समस्यायें ढो-ढोकर।  
 मरे जा रहे अरे निरन्तर चिन्तित होकर॥ ६५ ॥

इस जग की तुम केवल चिन्ता ही करते हो।  
 कुछ भी करना अरे किसी का शक्य नहीं है॥  
 जग की चिन्ता छोड़ बन्धु अपने में आओ।  
 अपने में ही जमो-रमो अपने को ध्याओ॥ ६६ ॥

सदाचार से रहो शुद्ध-सात्विक भोजन लो।  
 और अहिंसक वृत्ति ही अनुपम वृत्ति है॥  
 न्याय-नीति से वर्तन करना अनुपमेय है।  
 पर यह सबकुछ सहजभाव से ही करना है॥ ६७ ॥

सहजभाव से करना क्या सब कुछ होना है।  
 सहजभाव ही तो सच्चा मुक्ति का मग है॥  
 असहज होना ही भव है भव का मग भाई !।  
 कर्त्तापन के बोझ से असहज रहते हो॥ ६८ ॥

कर्त्तापन का बोझ उतारो सहजभाव से।  
 सहजभाव से सहज सहजता में आ जावो॥  
 आना-जाना तो केवल भाषा है भाई!  
 आना-जाना कहीं नहीं है मुक्तिमार्ग में॥ ६९ ॥

13

अपने में ही रहना है बस नन्तकाल<sup>१</sup> तक।  
 अपने में ही रहना है बस केवल मुक्ति॥  
 मुक्ति तो केवल अपनी परमात्म दशा है।  
 सहजानन्दी एवं परमानन्ददशा है॥ ७० ॥

आतम की दुर्दशा अहो यह भवसागर है।  
 इसमें रहना ही आतम की मजबूरी है॥  
 अरे आज तक इसमें रहकर नन्त<sup>२</sup> दुख सहे।  
 और धर्म के नाम करी बस मजदूरी है॥ ७१ ॥

काललब्धि आने पर सब कुछ समझ आवेगा।  
 समवायों के मिलने पर ही काम बनेगा॥  
 धीरज धारो धीरजता ही एक मार्ग है।  
 यथासमय सब सहजभाव से सबकुछ होगा॥ ७२ ॥

शान्त शान्त तुम सहजभाव से शान्त रहो तुम।  
 आकुलता से तो कुछ भी न होना जाना॥  
 सब कुछ पहले से निश्चित सर्वज्ञ जानते।  
 उसमें कुछ भी बदल नहीं हो सकता भाई !॥ ७३ ॥

जो कुछ जैसा आज हो रहा है दुनियाँ में।  
 उसके बारे में वर्द्धमान से पूँछा जाता॥  
 बतलाते या नहीं तुम्हारा मन क्या कहता?  
 बतला देते तो फिर तो सब नक्की ही था॥ ७४ ॥

वे शान्त रहे उनको कुछ भी परिणाम न आया।  
 सहजभाव से रहे जानते और देखते ॥  
 अनन्तवीर्य के धनी किन्तु कुछ भाव न आया।  
 फिर तुम भी क्यों इतने आकुल-व्याकुल होते? ॥ ७५ ॥

उनके सुख में रंचमात्र भी भंग पड़ा ना।  
 सहजभाव से शान्तभाव से रहे जानते ॥  
 तुम इतने नीचे-ऊपर क्यों होते भाई !।  
 सहजभाव से अपने में ही रहो निरन्तर ॥ ७६ ॥

सहजभाव से ही रहते हैं सभी जिनेश्वर।  
 वे ही हैं आदर्श हमारे सब जग जाने ॥  
 क्यों न चलें हम उनके ही मारग पर भाई!  
 और न कोई मार्ग निरापद है इस जग में ॥ ७७ ॥

सहजभाव से ज्ञाता-दृष्टा रहना ही तो।  
 एकमात्र है राह सुखी होने की भाई ! ॥  
 सभी जिनेश्वर देव चले हैं इसी राह पर।  
 इतनी सीधी बात समझ में क्यों न आई? ॥ ७८ ॥

कर्त्तापन की बुद्धि से इतने बोझिल हो।  
 उसके नीचे दबे जा रहे हो क्यों भाई ! ॥  
 कुछ विचार करने की शक्ति क्षीण हो गई।  
 इसकारण यह बात समझ में न आ पाई ॥ ७९ ॥

फेरफार करने की भावना उचित नहीं है।  
 जो जैसा हो रहा सहज स्वीकार करो तुम ॥  
 व्यर्थ विकल्पों से कुछ भी न होने वाला।  
 आकुलता ही हाथ लगेगी और नहीं कुछ ॥ ८० ॥

अरे विकल्पों के अनुसार काम ना होते।  
 अतः निरर्थक ही समझो तुम उनको भाई ! ॥  
 किन्तु सार्थक भी कह सकते हो तुम उनको।  
 कर्मबन्ध में वे निमित्त होते हैं तुमको ॥ ८१ ॥

अनुभव से है सिद्ध और जिनवाणी कहती।  
 तथा निरन्तर गुरुदेव भी समझाते हैं ॥  
 बोलो भाई! फिर भी यह मन नहीं मानता।  
 भवसागर का अभी किनारा बहुत दूर है ॥ ८२ ॥

आदिनाथ ने समझाया मारीचि न माना।  
 क्योंकि भव का अभी किनारा बहुत दूर था।  
 शेर ने माना क्योंकि किनारा पास आ गया।  
 काललब्धि के बिना अरे कुछ समझ न आता ॥ ८३ ॥

भवसागर का अरे किनारा लाना हो तो।  
 क्या करना है हमें बताओ पूज्य गुरुजी ! ॥  
 कुछ भी करना नहीं, सहज होना है भाई !।  
 अरे सहजता ही में तो सुख-शान्ति समाई ॥ ८४ ॥

ज्ञानी<sup>१</sup> ने जो जाना सब स्वीकार किया वह।  
 उसमें कुछ भी संशोधन का भाव न आया।।  
 रहे एकदम शान्त निराकुल अपने में ही।  
 अपनेपन के साथ हो गये इकदम तन्मय।। ८५ ।।

पर से इकदम भिन्न न उनमें कुछ कर सकता।  
 यद्यपि अपने भावों को मैं ही करता हूँ।।  
 पर अपने में कुछ करने का भार नहीं है।  
 जो कुछ होना है पहले से ही नक्की है।। ८६ ।।

केवलज्ञानी ने जाना पल-पल का सबकुछ।  
 भावी में भी जो होना वह भी जाना है।।  
 वह वैसा ही होगा उनने यह भी जाना।  
 अतः हमारे माथे पर कुछ भार नहीं है।। ८७ ।।

वह सब स्वीकृत हमें सहज ही है हे जिनवर !।  
 उसमें कुछ भी फेरफार का भाव नहीं है।।  
 अतः न कुछ भी करने की आकुलता भाई !।  
 अतः हमारे जीवन में सुख शान्ति समाई।। ८८ ।।

भवसागर का अरे किनारा जिनका आता।  
 उनको ही तो सहज सहजता सहज सुहाती।।  
 है अनन्त संसार उन्हें यह नहीं सुहाती।  
 उनको तो यह दुनियादारी ही भाती है।। ८९ ।।

अरे हमें तुम निकट भव्य लगते हो भाई !।  
 और किनारा भवसागर का आया समझो।।  
 इस सम्बन्धी प्रश्न सहज ही आया तुमको।  
 इसके लिये तुम्हें देते सौ बार बधाई।। ९० ।।

तुमसा साधर्मी पा हम निहाल हो गये।  
 साधर्मी का मिलन भाग्य से ही होता है।।  
 आज हमारा महाभाग्य जागा है समझो।  
 जो हमने तुम जैसा सत<sup>१</sup> साधर्मी पाया।। ९१ ।।

साधर्मी का सहज सम्मिलन हमें हुआ है।  
 उत्साहित है चित्त हमारा अधिक कहेँ क्या?।।  
 सहजभाव की सहज स्वीकृति तुमको होगी।  
 सहजभाव से पक्का है विश्वास हमारा।। ९२ ।।

वीतराग-सर्वज्ञदेव की वाणी में जो।  
 आया है वस्तुस्वरूप वह परम सत्य है।।  
 उस पर भी विश्वास न हो तो फिर क्या बोलें?।  
 उन्हें मानने का तो फिर क्या अर्थ रह गया?।। ९३ ।।

केवल पूजा-पाठ किये कुछ काम न होगा।  
 अरे मानना होगा उनके मूल कथन को।।  
 भावी का भी सब नक्की - यह मूल कथन है।  
 इसमें मीन-मेख करने से काम न होगा।। ९४ ।।

पर का कर्ता नहीं आत्मा - मूल कथन है।  
 कोई किसी का नहीं सभी हैं अपने-अपने।।  
 सभी द्रव्य हैं कर्ता-धर्ता अपने-अपने  
 कोई किसी का कुछ भी तो न करे कभी भी।। ९५।।

अपना भविष्य भी जो केवलि ने जाना-देखा।  
 उसमें भी कुछ फेरफार की बात कल्पना।।  
 यह भी तो है मूल कथन इसकी उपेक्षा।  
 करना भी तो किसी तरह भी शक्य नहीं है।। ९६।।

जो जानें केवलि यद्यपि हम नहीं जानते।  
 पर हम यह तो माने कि केवली जानते।।  
 जो भी उनने जाना-देखा भाविकाल का।  
 वह सब है सम्पूर्ण सत्य इतना तो मानो।। ९७।।

उसमें कुछ भी फेर बदल होगा न कभी भी।।  
 यह पक्का विश्वास हमें करना ही होगा।।  
 इसके बिन तो अरे बन्धुवर ! मुक्तिमग में।  
 एक कदम भी चल पाना सम्भव न होगा।। ९८।।

कर्त्तापन की बुद्धि इसके बिना न टूटे।  
 अर पर में अपनापन इसके बिना न छूटे।  
 कर्त्तापन अर अपनापन छूटे बिन भाई।  
 सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित हो नहीं सकेंगे।। ९९।।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित बिन मुक्ति न होगी।  
 मुक्ति के बिन नहीं कहीं सुख-शान्ति मिलेगी।।  
 पाना है सुख-शान्ति और दुःखों से मुक्ति।  
 सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित पाने ही होंगे।। १००।।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरणमय ही जीवन हो।  
 एकमात्र सद्भाव यही मेरे मन में हो।।  
 और नहीं हो कोई कामना मेरे मन में।  
 सहजभाव ही सहज होय मेरे जीवन में।। १०१।।

सहजभाव ही सहज धर्म है समझो भाई!  
 सहजभाव ही सच्चा जीवन जीवन धन है।।  
 सहजभाव की सहज स्वीकृति मुक्तिमग है।  
 सहजानन्दी जीवन ही सच्ची मुक्ति है।। १०२।।

सहजभाव का सहज रास्ता सहज प्राप्त कर।  
 मैं अपने अन्तर में अति सन्तुष्ट हुआ हूँ।।  
 अपने में ही जमकर रमकर हे परमात्म!  
 मैं अपने अन्तर में इकदम तृप्त हुआ हूँ।। १०३।।

सच्चे सुख का एकमात्र बस यही मार्ग है।  
 और अनन्ते सिद्ध हुये हैं इसी मार्ग से।।  
 दिव्यध्वनि में आया निश्चय मुक्तिमार्ग यह।  
 शेष कथन सब एकमात्र व्यवहार कथन है।। १०४।।



## तृतीय शतक : तत्त्वचिन्तन

( हरिगीत )

निज आत्मा को जानकर पहिचानकर निज आत्मा।  
 निज आत्मा का ध्यान धर जो हो गये परमात्मा॥  
 वे वीतरागी सर्वज्ञानी हितंकर सब लोक के।  
 श्री ऋषभ से वीरान्त तक चौबीस तीर्थंकर हुये॥ १॥

उने जगत के सामने जिस तत्त्व को प्रस्तुत किया।  
 सुख शान्तिमय जिस वीतरागी मार्ग को प्रस्तुत किया॥  
 वह अहिंसक मार्ग जग में आज भी विद्यमान है।  
 और उसको समझना भी एकदम आसान है॥ २॥

ऋषभ से वीरान्त तक नमकर सभी को भाव से।  
 उनके बताये मार्ग को उत्साह से अतिचाव से॥  
 निजचित्तशुद्धि के लिये अत्यन्त निर्मल भाव से।  
 तत्त्वचिन्तन कर रहा हूँ सहज ही सद्भाव से॥ ३॥

यदि पढ़े कोई चाव से गहराई से अध्ययन करे।  
 पठन-पाठन करे मन से भाव से चिन्तन करे॥  
 और उसको लाभ हो तो होय मेरा चित्त भी।  
 प्रसन्न है हे बंधुवर! हम सभी अनुमोदन करें॥ ४॥

जीव और अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा।  
 अर मोक्ष ये सब तत्त्व हैं अर अर्थ हैं तत्त्वार्थ हैं॥  
 इनका विमल श्रद्धान दर्शन ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।  
 और दर्शन ज्ञानमय निज में रमणता ध्यान है॥ ५॥

17

पुण्य एवं पाप भी तत्त्वार्थ में आते रहे।  
 पुण्य एवं पाप आस्रव बंध के ही भेद हैं॥  
 पुण्य आस्रव पाप आस्रव इसतरह से बंध में।  
 हम पुण्यबंधरु पापबंधरु भेद करते रहे हैं॥ ६॥

यद्यपि षट्द्रव्यमय सारा जगत ही ज्ञेय है।  
 किन्तु सब परद्रव्य केवल ज्ञेय केवल ज्ञेय हैं॥  
 आत्मा के विकारी परिणाम आस्रव बंध भी।  
 रे पुण्य एवं पाप भी तो ज्ञेय हैं पर हेय हैं॥ ७॥

मुक्ति-संवर-निर्जरा ये ज्ञेय हैं उपादेय हैं।  
 है ज्ञेय अपना आत्मा श्रद्धेय है अर ध्येय है॥  
 निज आत्मा में अपनपन सम्यक्त्व है श्रद्धान है।  
 निज आत्मा में रमणता ही आत्मा का ध्यान है॥ ८॥

श्रद्धान एवं ध्यान ही तो मुक्तिमग में मुख्य हैं।  
 निज आत्मा की साधना आराधना ही मुख्य हैं॥  
 अरे आस्रव बंध तो दुखकरण हैं दुखरूप हैं।  
 अशुचि हैं विपरीत हैं अर भवभ्रमण के रूप हैं॥ ९॥

अरे आस्रव-बंध तो भवरूप हैं भवकूप हैं।  
 अरे इनके बंधनों में फंस रहे चिद्रूप हैं॥  
 पाप आस्रव पुण्य आस्रव बंध के ही हेतु हैं।  
 यदि बंध से है छूटना तो मोह इनका छोड़िये॥ १०॥

पुण्य को भी पापवत् ही हेय कहकर आपने।  
पुण्य का अपमान प्रियवर कर दिया है आपने॥  
संसार में सुख-शांति दाता स्वर्गदाता पुण्य है।  
परम्परा से कहें तो अपवर्ग दाता पुण्य है॥ ११॥

आस्रव हैं हेय एवं बंध भी जब हेय हैं।  
मुक्तीरमा की प्राप्ति में इनका ना रंच प्रदेय है॥  
जब सभी आस्रव हेय हैं सब बंध भी जब हेय हैं।  
पुण-पाप उनके भेद हैं अतएव वे भी हेय हैं॥ १२॥

मिथ्यात्व अविरति प्रमाद अर कषाय एवं योग ये।  
सब स्वयं आस्रव भाव हैं अर बंध के सब हेतु हैं॥  
पुण्य एवं पाप सब बस इन्हीं भावों से बंधे।  
क्योंकि ये सब भाव ही तो बंध के कारण कहे॥ १३॥

कर्मबंधन होय इनसे कर्म ना इनसे कटें।  
बंध के ये पाँच हेतु पुण्य भी इनसे बंधे॥  
बंध के जो हेतु वे सब मुक्तिमग के हेतु ना।  
मुक्ति के हैं हेतु जो वे बंध के हों हेतु ना॥ १४॥

जिन्हें मुक्ति चाहिये वे बचें आस्रव-बंध से।  
वे बचें सबसे पूर्णतः सब तरह के संबंध से॥  
कोई किसी के कुछ नहीं हम भी किसी के कुछ नहीं।  
और कोई किसी से भी कभी जुड़ सकते नहीं॥ १५॥

सभी द्रव्यों में परस्पर वज्र की दीवाल है।  
कोई किसी का कुछ करे इकदम असंभव बात है॥  
स्वयं में रह आत्मा यह जान सकता सभी को।  
क्योंकि सबको जानना इसका स्वभाविक भाव है॥ १६॥

सभी अपने में रहें सब स्वयं में ही परिणमों।  
हैं अपरिणामी तत्त्वतः परिणमन हो पर्याय में॥  
जीव बदले स्वयं में पर वह अजीव नहीं बने।  
जीव रहकर जीव सब ही निरन्तर बदला करें॥ १७॥

बदलकर भी न बदलना आत्मा का भाव है।  
ना बदलकर भी बदल जाना यही आत्मस्वभाव है॥  
अपेक्षा समझे बिना कुछ भी समझ ना आयेगा।  
अपेक्षा के समझते सब समझ में आ जायेगा॥ १८॥

शुद्ध और अशुद्ध जग में दो तरह के भाव हैं।  
अशुद्ध भी हैं दो तरह के शुभ-अशुभ के भेद से॥  
शुद्ध बंधन काटते अर शुभाशुभ बंधन करें।  
जो भाव बंधन करें उनको मुक्तिमग कैसे कहें?॥ १९॥

शुद्ध कहते हैं जिनेश्वर वीतरागी भाव को।  
अशुद्ध कहते हैं जिनेश्वर रे शुभाशुभ राग को॥  
वीतरागी भाव से ही कर्म के बंधन कटें।  
अर शुभाशुभभाव तो पुण-पाप का बंधन करें॥ २०॥

पुण-पाप से होता निरन्तर चतुर्गति में परिभ्रमण।  
पुण-पाप से हों पार जब, तब रुके जग का परिभ्रमण॥  
हो धर्मबुद्धि पुण्य में भवमूल मिथ्याभाव है।  
वीतरागीभाव हो तो भवजलधि से पार है॥ २१॥

रतनत्रय के भाव ही तो वीतरागी भाव हैं।  
अर शुभाशुभ भाव तो मिथ्यात्व और कषाय हैं॥  
मिथ्यात्व और कषाय मुक्तिमार्ग हो सकते नहीं।  
अर वीतरागीभाव से पुण्य-पाप बंध सकते नहीं॥ २२॥

पुण्य में उपादेय बुद्धि स्वयं मिथ्याभाव है।  
बंध करने योग्य है - यह भयंकर मिथ्यात्व है॥  
बंध चाहे पुण्य का या पाप का हो जानलो।  
एक-से हैं हेय इनकी सत्यता पहिचान लो॥ २३॥

पुण्य बेड़ी स्वर्ण की अर पाप बेड़ी लोह की।  
बेड़ी तो बंधन रूप चाहे स्वर्ण की या लोह की॥  
पुण्य की अनुकूलता है लुभाती इस जीव को।  
अत्यन्त गहरे भवजलधि में डुबाती इस जीव को॥ २४॥

पुण्य से अधिकांशतः भवभोग सामग्री मिले।  
और उसके भोगने से पाप का ही बंध हो॥  
इसतरह यह पुण्य बदले पाप में सम्पूर्णतः।  
रे पाप की प्रतिकूलता, पुण्यात्मा को प्राप्त हो॥ २५॥

घातिया सब पाप हैं पुण्य-पाप का यह भेद तो।  
अघातियों में हो सदा जो फले बस संयोग में॥  
संयोग हैं सब निरर्थक रे क्योंकि वे परद्रव्य हैं।  
इक द्रव्य दूजे द्रव्य में कुछ कभी कर सकता नहीं॥ २६॥

पुण्य का हो उदय तो अनुकूल हों संयोग सब।  
पाप का हो उदय तो प्रतिकूल हों संयोग सब॥  
परद्रव्य की अनुकूलता-प्रतिकूलता से धर्म का।  
संबंध कुछ भी है नहीं जिनदेव ने ऐसा कहा॥ २७॥

अनुकूलता-प्रतिकूलता को भोगने का भाव तो।  
भोग ही है इसलिये वे धर्म हो सकते नहीं॥  
हेयबुद्धिपूर्वक रे त्यागने का भाव तो।  
धर्म ही है इसलिये स्वीकार करना चाहिये॥ २८॥

विकल्पों का शमन होना वीतरागी भाव है।  
अर शुभाशुभभाव तो बस विकल्पों का जाल है॥  
निर्विकल्पक वीतरागीभाव निश्चय धर्म है।  
उपयोग का निज आत्मा में लीन होना मर्म है॥ २९॥

पुण्योदयों से प्राप्त जो अनुकूल सब संयोग हैं।  
उन सभी के संयोग को कहते जगत में परिग्रह॥  
परिग्रह है पाप सारा जगत जाने बात यह।  
इसतरह तो पाप भी है प्राप्त होता पुण्य से॥ ३०॥

पुण-पाप दोनों कर्म क्योंकि कर्म की सन्तान हैं।  
जो कर्म हैं वे कर्मनाशक धर्म हो सकते नहीं॥  
निष्कर्म होने के लिये हो धर्म की आराधना।  
धर्म की आराधना हो आत्मा की साधना॥ ३१॥

कर्मबंधन काटने को कर्म ही करते रहे।  
कर्म ही करते रहे तो कर्म ही बंधते रहे॥  
वीतरागी भाव ही है धर्म - यह जाना नहीं।  
पुण्य भी है पाप उसको पाप सम माना नहीं॥ ३२॥

पाप को तो पाप कहता जगत में सम्पूर्ण जग।  
पर विरल ज्ञानी जन कहें कि पुण्य भी तो पाप है॥  
स्पष्ट शब्दों में कही यह बात श्री जोइन्दु ने।  
जोगसारु ग्रन्थ में जोइन्दु मुनिवरदेव ने॥ ३३॥<sup>१</sup>

और प्रवचनसार में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने।  
स्पष्ट शब्दों में कहा है प्रथम ही अधिकार में॥  
पुण्य-पाप में अन्तर नहीं है जो न माने बात ये।  
संसार-सागर में भ्रमे मद-मोह से आच्छन्न वे॥ ३४॥<sup>२</sup>

पुण्य में से धर्मबुद्धि छूटना ही चाहिये।  
पुण्य हो, पर धर्मबुद्धि छूटना ही चाहिये॥  
पुण्य तो बस पुण्य है पर उसे शिवमग मानना।  
मिथ्यात्व है - इस बात को तो जानना ही चाहिये॥ ३५॥

१. योगसार दूहा-७१, २. प्रवचनसार गाथा-७७

ना पुण्य है मिथ्यात्व किन्तु उसे शिवमग मानना।  
मिथ्यात्व है, बस इसलिये रे मानना है छोड़ना॥  
मानना है छोड़ना अर जानना है छोड़ना।  
भले हो<sup>१</sup>, पर उसे शिवमग मानना है छोड़ना॥ ३६॥

मुक्तिमग में पुण्य होना सहज ही परिणाम है।  
पर उसे शिवमग मानना मिथ्यात्व है अज्ञान है॥  
इस सूक्ष्म अन्तर को सदा पहिचानते हैं ज्ञानिजन।  
यह बात आती है नहीं अज्ञानियों के ध्यान में॥ ३७॥

भव्यता के बिना यह सत् समझना संभव नहीं।  
काललब्धि के बिना भी असंभव है समझना॥  
यदि शेष है संसार तो फिर समझ में आता नहीं।  
और सम्यक् दिशा में भी कदम उठते हैं नहीं॥ ३८॥

और सच्चे देव-गुरु का योग जबतक न मिले।  
अर जिनवचन के श्रवण का संयोग जबतक न मिले॥  
बात तबतक समझ में यह सहज आ सकती नहीं।  
समवाय हों सब सहज तब यह समझ में आ जायेगी॥ ३९॥

सहजता धारण करो सब समय पर होगा स्वयं।  
निज आतमा में अपनपन अर सहज ही होगा रमण॥  
सहज होगा परिणमन अर सहज ही चिन्तन-मनन।  
सहज हो तल्लीनता अर सहज मुक्ति में गमन॥ ४०॥

१. पुण्य का अस्तित्व भले हो, पर उसे शिवमग नहीं माना जा सकता।

कर्मबंधन अवस्था संसार है दुखरूप है।<sup>१</sup>  
और आस्रव बंध पुण्यरु पाप भव के हेतु हैं।<sup>२</sup>  
कर्मबंधन मुक्त एवं विकारों से शून्य जो।  
वह अवस्था जीव की है मोक्ष जो सुखरूप है।<sup>३</sup> ४१॥

और संवर निर्जरा ही मुक्ति के कारण कहे।<sup>४</sup>  
नवतत्त्व का वर्गीकरण इन चार तत्त्वों में किया।।  
प्रथम दो हैं हेय एवं शेष दो उपादेय हैं।  
यहाँ भी पुण-पाप दोनों हेय में ही आ रहे।। ४२॥

अत्यन्त है स्पष्ट फिर भी पुण्यलोभी अज्ञजन।  
सुख-शान्तिदायक मानकर ही पुण्य को अपना रहे।।  
वीतरागी भाव जो सच्चा धरम है लोक में।  
उसे जाने ही नहीं जिनधर्म के आलोक में।। ४३॥

राग होवे किसी से भी और हो जिस रूप में।  
राग तो बस आग है हो भोग में उपभोग में।।  
आग फैलेगी जहाँ सब ही भसम हो जायेगा  
राग फैलेगा जहाँ सुख शान्ति को खा जायेगा।। ४४॥

सर्वज्ञ भाषित वीतरागी धर्म ही जिनधर्म है।  
कांक्षा बिन सहज जीवन सहजता का मर्म है।।  
भोग में सुख बुद्धिपूर्वक चाह को कांक्षा कहें।  
अज्ञजन नित निरन्तर ही कांक्षा में रत रहें।। ४५॥

१. संसार तत्त्व २. संसारोपाय तत्त्व ३. मोक्ष तत्त्व ४. मोक्षोपाय तत्त्व

चार तत्त्वों रूप में वर्गीकरण जो तत्त्व का।  
पुण्य को उसमें लिया संसार कारण तत्त्व में।।  
संसार कारण तत्त्व तो रे ग्राह्य हो सकता नहीं।  
वह तो नियम से हेय है जिनदेव का ऐसा कथन।। ४६॥

अरे संवर निर्जरा तो वीतरागी भाव हैं।  
पर पुण्य बंधक भाव तो बस राग के ही रूप हैं।।  
शुभ राग हैं पर राग हैं वे राग के बाहर नहीं।  
राग हैं तो हेय ही हैं वीतरागी धर्म में।। ४७॥

पुण्य का फल भोगते हैं ऋद्धिधारी देवगण।  
वे विषयसुख को भोगते पर हैं सभी संसार में।।  
भले हों वे देव पर यह देवगति संसार में।  
उनको सुखी कैसे कहें पंचेन्द्रिय विषयों में रमें।। ४८॥

स्पष्ट शब्दों में लिखा है ग्रन्थ प्रवचनसार में।  
सुख का कथन करते हुये प्रथम सुख अधिकार में।।  
पंचेन्द्रिय विषयों में रती वे हैं स्वभाविक दुखीजन।  
दुख के बिना विषय में व्यापार हो सकता नहीं।। ४९॥

पंचेन्द्रिय विषयों में रति तो सर्वथा ही हेय है।  
जिस पुण्य से यह सब मिले वह क्यों न होवे हेय रे।।  
पुण्य करने योग्य है बस बात इतनी ही नहीं।  
वह धर्म है, शिवहेतु है कुछ अज्ञजन ऐसा कहें।। ५०॥

१. प्रवचनसार गाथा-६४

यह बात कहते हैं कि यह जिनदेव का ही कथन है।  
पर वीतरागी धर्म में यह बात कैसे चल रही?।।  
जो समझते सच्चाई उनको चाहिये रोके इसे।  
युक्ति से इस बात को समझायें अर प्रस्तुत करें।। ५१।।

यद्यपि ज्ञानी किसी से उलझना नहीं चाहते।  
तथापि यह बात जिनमत की अलौकिक जानना।।  
इसे जाने बिना जिनमत समझ में आता नहीं।  
इसलिये सद्ज्ञानियों से चुप रहा जाता नहीं।। ५२।।

सद्ज्ञानियों के प्रयासों से निरन्तर चर्चित रही।  
धारा-प्रवाही रूप से यह बात चलती ही रही।।  
और आगे भी सदा चलती रहेगी निरन्तर।  
प्रबल इसकी धार तो बहती रहेगी निरन्तर।। ५३।।

अरे दर्शनज्ञान सम्यक्चरणमय जो परिणति।  
यह वीतरागी भाव ही ले जाय जो अनुपम गति<sup>१</sup>।।  
शुद्ध है उपयोग एवं शुद्ध ही है परिणति।  
इस एक निश्चय धरम से ही प्राप्त हो पंचमगति।। ५४।।

इस वीतरागी भाव की उत्पत्ति संवर जानिये।  
और इसकी वृद्धि ही है निर्जरा पहिचानिये।।  
और इसकी पूर्णता है मुक्ति परमानन्दमय।  
उत्पत्ति वृद्धि पूर्णता सम्पूर्णता आनन्दमय।। ५५।।

१. समयसार के मंगलाचरण में सिद्ध अवस्था को अनुपमगति कहा है।

आस्रवों का रोध संवर गुप्ति समिति पूर्वक।  
दशधर्म बारह भावना बाईस परिषह जीतकर।।  
चारित्र धारण कर मुनीश्वर करें संवर-निर्जरा।  
मुक्तिमग में पग धरें अर अन्त में मुक्ति वरें।। ५६।।

इन सभी का विशद अध्ययन जिनागम परिप्रेक्ष्य में।  
इन सभी को जानना यदि जिनागम आलोक में।।  
सूत्रजी<sup>२</sup> का और उसकी विशद टीका<sup>३</sup> ग्रन्थ का।  
अध्ययन करें गहराई से सम्पूर्ण समताभाव से।। ५७।।

साधु हैं शुद्धात्मसेवी सहज उनकी परिणति।  
क्षमा मृदुता सरलता अर सत्य शुचि उनकी गति।।  
संयमित तप-त्यागमय उनके अकिंचिन भाव हैं।  
निज ब्रह्म में लवलीन हैं अत्यन्त निर्मल भाव हैं।। ५८।।

अनित्यादि भावना का चिन्तवन करते सदा।  
वीतरागी भाव का पोषण करें वे सर्वदा।।  
दशधर्म बारह भावना को समझना गहराई से।  
यदि चाहते हो तो अपेक्षित<sup>३</sup> ग्रन्थ का अध्ययन करें।। ५९।।

इस वीतरागी भाव से विपरीत जो-जो भाव हैं।  
और आस्रव-बंध के अनुकूल जो-जो भाव हैं।।  
वे शुभाशुभभाव भव के हेतु हैं भवरूप हैं।  
मुक्ति के हेतु नहीं वे मुक्ति के विपरीत हैं।। ६०।।

१. तत्त्वार्थसूत्र २. सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक आदि।

३. डॉ. भारिल्ल कृत धर्म के दशलक्षण एवं बारह भावना : एक अनुशीलन ग्रन्थ का अध्ययन करें।

मुक्ति के अनुकूल तो इकदम अरागीभाव हैं।  
परमार्थ दर्शन-ज्ञान निर्मलचरण समताभाव हैं॥  
शुद्धपरिणतिरूप हैं अर शुद्ध ही उपयोगमय।  
आनन्दमय सुख शान्तिमय बस वीतरागी भाव हैं॥ ६१॥

वीतरागी भाव संवर निर्जरा के रूप हैं।  
वीतरागी भाव मुक्तिमार्ग के अनुरूप हैं॥  
मुक्ति में भी वीतरागी भाव रहते निरन्तर।  
आत्मा के भाव रहते आत्मा में निरन्तर॥ ६२॥

कर्त्तापने के भार से पूरी तरह जो मुक्त हैं।  
और सारे जगत से पूरी तरह निर्लिप्त हैं॥  
मुक्त हैं निर्लिप्त हैं निर्भार हैं भवपार हैं।  
और अपने आपके जो स्वयं ही आधार हैं॥ ६३॥

जानना बस जानना बस जानते रहना सदा।  
अतीन्द्रिय आनन्द में नित लीन रहना सर्वदा॥  
ज्ञानमय आनन्दमय हे प्रभो! ज्ञानानन्दमय।  
शान्त इकदम शान्त एवं सहज परमानन्दमय॥ ६४॥

मुक्त जीवों के अरे आनन्द को कैसे कहें?  
उपमान ऐसा है नहीं जो व्यक्त उसको कर सके॥  
सामर्थ्य भाषा में नहीं वाणी स्वयं लाचार है।  
मोक्षसुख की क्या कहें न आर है न पार है॥ ६५॥

23

संसार सुख से अनन्ता सुख मोक्ष में जग जन कहें।  
संसार में सुख है नहीं हम गुणनफल किससे करें॥  
संसार का सुख सुख नहीं है दुःख का ही रूप है।  
श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने ही कहा प्रवचनसार में॥ ६६॥

इन्द्रिय सुख सुख नहीं दुख है विषम बाधा सहित है।  
है बंध का कारण दुखद परतंत्र है विच्छिन्न है॥<sup>१</sup>  
इस जाति का सुख मोक्ष में तो कभी हो सकता नहीं।  
मोक्षसुख की जाति तो है अतीन्द्रिय आनन्दमय॥ ६७॥

इन्द्रिय सुख की जाति का सुख मोक्ष में माने यदि।  
तो मानना होगा हमें कि मोक्ष हो शुभभाव से॥  
क्योंकि रे शुभभाव से ही प्राप्त होता विषय सुख।  
यदि मोक्ष में भी वही है तो क्यों न हो शुभभाव से॥ ६८॥

यदि बात यह तो क्यों कहा इस बात को जिनशास्त्र में।  
है अनन्तासुख मोक्ष में संसार से होता प्रभो ॥  
यदि इसका उत्तर चाहिये तो मोक्षमार्गप्रकाश<sup>२</sup> के।  
सातवें अधिकार का अध्ययन करो गहराई से<sup>३</sup>॥ ६९॥

मोक्षसुख की जाति को रे अज्ञान जाने नहीं।  
अतीन्द्रिय आनन्द की वे जाति पहिचाने नहीं॥  
अरे सुख के नाम से वे विषयसुख ही जानते।  
अतः उसको प्राप्त कर सौभाग्य अपना मानते॥ ७०॥

१. प्रवचनसार गाथा - ७६ २. मोक्षमार्गप्रकाशक, ३. मोक्षमार्गप्रकाशक पृ. २३३-२३४

मोक्षसुख की जाति का अन्दाज उनको भी लगे।  
मोक्षसुख की कामना उनके हृदय में भी जगे॥  
इस भाव से ही ज्ञानिजन ने कहा यह व्यवहार से।  
बस बात तो इतनी ही है इससे अधिक कुछ है नहीं॥ ७१॥

ऐसे कथन में ज्ञानियों की भावना पहिचानिये।  
रे मोक्षसुख की जाति तो अद्भुत अलौकिक जानिये॥  
अरे उसका स्वाद तो रे ज्ञानिजन ही जानते।  
आत्मा के अनुभवी गहराई से पहिचानते॥ ७२॥

अरे उनकी होड़ में न और कोई अन्य है।  
जो आतमा के मार्ग पर वे धन्य हैं वे धन्य हैं॥  
आतमा की भावना भाते जो बारंबार हैं।  
जो आतमा के अनुभवी उनको नमन शतबार है॥ ७३॥

आतमा की भावना भाते रहें जो निरन्तर।  
आतमा के गीत जो गाते रहे हैं निरन्तर॥  
निज आत्मा में लीन हो जो आत्मामय हो गये।  
सिद्धसुख को प्राप्त कर परमात्मामय हो गये॥ ७४॥

चैतन्यमय ध्रुव आतमा तत्त्वार्थ में शिरमौर है।  
वह ज्ञानमय आनन्दमय उसके समान न और है॥  
स्वयं ही परिपूर्ण एवं स्वयं ही गुणवान है।  
तत्त्वार्थ में है प्रथम एवं वह स्वयं भगवान है॥ ७५॥

परस्पर जो विरोधी है धर्म उनका धाम है।  
शक्तियों का संग्रहालय गुणों का गोदाम है॥  
आनन्द का रसकंध एवं ज्ञान का घनपिण्ड है।  
अनन्तबल से विभूषित है और अति परचण्ड है॥ ७६॥

चण्ड है परचण्ड है घनपिण्ड है यह आतमा।  
रे सन्त है भवअन्त है भगवन्त है यह आतमा॥  
अरे जिसका ध्यान धर यह आतमा परमात्मा।  
बने यह बस वही है चैतन्यमय ध्रुव आतमा॥ ७७॥

अरे इसके गीत हम गाये कहाँ तक विज्ञवर।  
और इसके गुणों की महिमा बताये कहाँ तक॥  
इन सप्त तत्त्वों में अरे सर्वोत्तम है आतमा।  
हम स्वयं ही हैं आतमा हम स्वयं ही परमात्मा॥ ७८॥

जीव पहला तत्त्व है अर मोक्ष अन्तिम तत्त्व है।  
अनन्त सुखमय ज्ञानमय अर भवजलधि का अन्त है॥  
चैतन्यमय इस जीव की सर्वोत्तम पर्याय है।  
बस उसे पाने के लिये ही भावना है भाव है॥ ७९॥

एक संवर निर्जरा मग मोक्ष जाने के लिये।  
इक वीतरागी भाव ही है मोक्ष पाने के लिये॥  
उपयोग की परिपूर्ण शुद्धि एकमात्र उपाय है।  
बस उसे पाने के लिये ही भावना है भाव है॥ ८०॥

अर शुभाशुभभाव का तो टूटना अनिवार्य है।  
पाप एवं पुण्य का भी छूटना अनिवार्य है॥  
संपूर्ण आस्रव बंध को भी दूर होना चाहिये।  
अर आत्मा का आत्मा में रमण होना चाहिये॥ ८१॥



रतन त्रय ही वीतरागी भाव हैं सम्पूर्णतः।  
निज आत्मा में अपनपन अर आत्मा में रमणता॥  
ही वीतरागी भाव हैं ये सहज होना चाहिये।  
सहज होना चाहिये बस सहज होना चाहिये॥ ८२॥

सहजता ही धर्म है अर सहजता पुरुषार्थ है।  
हर स्थिति में सहज रहना साधना है साध्य है॥  
शान्त इकदम शान्त रहना साधना का रूप है।  
विकल्पों में न उलझना निर्विकल्प स्वरूप है॥ ८३॥

निर्विकल्पक भाव ही तो आत्मा का ध्यान है।  
आत्मा के ध्यान में श्रम कभी हो सकता नहीं॥  
आत्मा की साधना तो सहज ही होती सदा।  
सहज एवं सरल होता साधु का जीवन सदा॥ ८४॥

साधु का जीवन सदा आनन्द का ध्रुवधाम है।  
श्रम नहीं उसमें अरे उसमें पूर्णतः विश्राम है॥  
रे पूर्णतः विश्राम है न काम है<sup>१</sup> न धाम है<sup>२</sup>।  
बस आत्मा का ज्ञान है श्रद्धान है अर ध्यान है॥ ८५॥

तत्त्वनिर्णयपूर्वक सब विकल्पों का शमन हो।  
शांति संयम और समताभाव का आगमन हो॥  
रंच भी श्रम नहीं हो बस पूर्णतः विश्राम हो।  
आत्मा बस आत्मा के ध्यान में ही मगन हो॥ ८६॥

१. काम विकार नहीं है, तात्पर्य यह है कि स्त्री आदि का संयोग नहीं है।

२. घर नहीं है, तात्पर्य यह है कि गृहस्थी का बोझा नहीं है।

पूर्णतः निर्वृत्त हैं जो गृहस्थी के भार से।  
पूरी तरह जो मुक्त हैं आभार के व्यवहार से॥  
लेना नहीं देना नहीं कुछ किसी से अनुराग से।  
बस जानते हैं देखते हैं वीतरागीभाव से॥ ८७॥

परद्रव्य में कुछ काम ना रे क्योंकि कर सकते नहीं।  
और अपने परिणामन को भी बदल सकते नहीं॥  
जब काम कुछ भी है नहीं फिर श्रम कहाँ से होयगा।  
श्रम के बिना ही श्रमण का जीवन सफलतम होयगा॥ ८८॥

अरे अविरत समकिति से तेरहवें गुणस्थान तक।  
असंख्यगुणमय निर्जरा के एकदश स्थान हैं॥<sup>१</sup>  
है शुद्धि वृद्धि निर्जरा आनन्द वृद्धि निर्जरा।  
इस तरह तो मुक्तिमग आनन्दमय होती दशा॥ ८९॥

आनन्दमय आनन्दमय रे असंख्य गुण आनन्दमय।  
मुक्तिमग तो निरन्तर रहता सदा आनन्दमय॥  
आनन्दमय इस दशा में श्रम को कहाँ अवकाश है?  
श्रम तो सदा ही खेद को उत्पन्न करती दशा है॥ ९०॥

दिगम्बरों की मुनिदशा के रूप और स्वरूप को।  
दिगम्बरों के जिनागम से जानिये पहिचानिये॥  
कौन ऐसी जरूरत जिसके लिये वे श्रम करें।  
सभी जिम्मेदारियों से पूर्णतः ही मुक्त हैं॥ ९१॥

१. तत्त्वार्थसूत्र, ९ अध्याय, ४५ सूत्र

कोई तरह का बोझ लेकर वे कभी चलते नहीं।  
और कोई काम को वे किसी से बंधते नहीं।।  
कहीं जाने की उन्हें होती नहीं जल्दी कभी।  
इस जगत में किसी से भी राग वे करते नहीं।। ९२।।

जहाँ जैसी व्यवस्था हो वीतरागी भाव से।  
ठहर जाते शान्ति से रहते विरागी भाव से।।  
समय पर सब विधिपूर्वक निकलते आहार को।  
ग्रहण करते हैं सदा जो विधिपूर्वक प्राप्त हो।। ९३।।

किसी से लेना नहीं देना नहीं है किसी को।  
सभी से समभाव रखना वीतरागी भाव से।।  
किसी से भी व्यर्थ की बातें कभी करना नहीं।  
तत्त्वचर्चा के अलावा और कुछ करना नहीं।। ९४।।

इसतरह के मुनिवरों को कौन सा श्रम चाहिये?।  
जब कहीं भी रहना नहीं तो कौन आश्रम चाहिये?।।  
पढ़ना-पढ़ाना शान्ति से स्वाध्याय करना चाहिये।  
और तीनों समय विधिवत ध्यान करना चाहिये।। ९५।।

आतमा की भवदुखों से मुक्ति ही बस मुक्ति है।  
निर्विकल्पक समाधि में समा जाना मुक्ति है।।  
अरे कुछ करना नहीं यह सब सहज होता अरे।  
सहज रहना सहज रहना सहज ही रहना अरे।। ९६।।

धर्म का जो रूप है वह श्रमस्वरूप नहीं कहा।  
श्रम परिश्रम रूप है जो थकावट पैदा करें।।  
धर्म आतम शुद्धि है जो शुद्धि की वृद्धि करें।  
आनन्द की वृद्धि करे असंख्यगुण वृद्धि करे।। ९७।।

असंख्यगुणी प्रतिपल बढ़े आनन्द की ध्रुवधार जब।  
आनन्द की ध्रुवधार में श्रम का कहाँ स्थान है।।  
जब नहीं करने रूप है तब व्यर्थ में श्रम क्यों करें?।  
अरे श्रम से दूर रह हम धर्म में आगे बढ़ें।। ९८।।

धर्म की ध्रुवधार तो है ज्ञानमय आनन्दमय।  
और संवर निर्जरा है ज्ञानमय आनन्दमय।।  
अरे मुक्तिमार्ग एवं मुक्ति है आनन्दमय।  
अब तो अनन्ताकाल तक आनन्द ही आनन्द है।। ९९।।

आतमा को जान लो करलो उसी में अपनपन।  
उसी को निज जान लो हो जावो उसमें ही मगन।।  
बस अभी से आज से आनन्द ही आनन्द है।  
आनन्द है आनन्द है आनन्द है आनन्द है।। १००।।

( दोहा )

जीव तत्त्व आनन्दमय मोक्षतत्त्व आनन्द।  
इनका चिन्तन-मनन भी है आनन्दानन्द।। १०१।।  
आतम का चिन्तन-मनन अर आतम का ध्यान।  
बना रहे नित-निरन्तर हो आनन्द महान।। १०२।।

चैत्रबदी तेरस अरे दो अपरेल उनीस।  
यह चिन्तन पूरा हुआ नमो नमो आदीश।। १०३।।

## चतुर्थ शतक : क्रमनियमितपर्याय

( दोहा )

सत्स्वरूप चैतन्यमय परमानन्द अनूप।  
समयसारमय आत्मा मैं ही हूँ निजरूप॥ १॥

( वीर )

स्वयं सिद्ध सर्वज्ञ स्वभावी परमात्म का अभिनन्दन।  
अज अनादिमध्यान्त आत्मा का कर कोटि-कोटि वंदन॥  
वीतराग-सर्वज्ञ हितंकर अरहंतों का सिद्धों का।  
वंदन-अभिनन्दन करते हैं सभी संत भगवन्तों का॥ २॥  
अपने-अपने इष्टदेव को सभी मानते हैं सर्वज्ञ।  
अपने-अपने गुरुजनों को सभी मानते हैं मर्मज्ञ॥  
दिव्यध्वनि अनुसार रचित जो शास्त्र वही जिनवाणी है।  
इनके ही मंगलप्रसाद से अपनी बात बनानी है॥ ३॥  
देव-शास्त्र-गुरु के प्रसाद से द्रव्य और पर्यायमयी।  
वस्तु का स्वरूप जो जाना जाता है आनन्दमयी॥  
यथायोग्य वन्दन अभिनन्दन करके आदर करता हूँ।  
जैसा जो कुछ जाना मैंने उसकी चर्चा करता हूँ॥ ४॥  
स्वयं सिद्ध जो सभी द्रव्य हैं वे अनादि से हैं जैसे।  
अनन्तकाल तक सदा रहेंगे स्वतः स्वयं वे सब वैसे॥  
जीव रहेंगे जीव सदा ही वे जड़रूप नहीं होंगे।  
जड़ भी जड़ ही सदा रहेंगे चेतनरूप नहीं होंगे॥ ५॥

27

द्रव्यरूप से यह निश्चित है इसमें कुछ अदला-बदली।  
कभी नहीं हो सकती एवं कभी नहीं होती भाई॥  
यह त्रैकालिक परम सत्य है इसे सभी स्वीकार करो।  
यह त्रैकालिक परम धरम है इससे न इन्कार करो॥ ६॥

जैसे द्रव्य द्रव्यरूप से कभी न बदले बात अटल।  
वैसे वह पर्यायरूप से नित बदले प्रतिपल पल-पल॥  
जैसे द्रव्य अपरिणामी है वैसे ही परिणामी है।  
द्रव्यरूप से कभी न बदले पर पर्याय बदलती है॥ ७॥

नहीं बदलकर नित्य बदलना यह स्वभाव की खूबी है।  
नित्य बदलकर नहीं बदलना यह भी बात बखूबी है॥  
वस्तु नित्य है अर अनित्य है नित्यानित्य जरूरी है।  
स्याद्वाद की अद्भुत महिमा जिनशासन की खूबी है॥ ८॥

पर्यायों के परिवर्तन की अद्भुत कथा निराली है।  
जिसे समझकर भवि जीवों की आँखें खुलने वाली हैं॥  
सभी द्रव्य परिणमें नित्य अपने क्रमनियमित भावों में।  
क्रमनियमित पर्यायों में अर अपने-अपने भावों में॥ ९॥

पर्यायें क्रमनियमित हैं - इस महासत्य का उद्घाटन।  
एक पंक्ति<sup>१</sup> से हो जाता मिल जाता हमें मार्गदर्शन॥  
आत्मख्याति की इस पंक्ति पर बार-बार बलि जाऊँ मैं।  
अमृतचन्द्राचार्यदेव के चरणों में झुक जाऊँ मैं॥ १०॥

१. आचार्य अमृतचन्द्र : आत्मख्याति ३०८ से ३११ गाथाओं की टीका

२. जीवो हि तावत्क्रमनियमितात्मपरिणामैरुत्पद्यमानो जीव एव, नाजीवः।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता कभी नहीं होता।  
एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का उत्पादक भी नहीं होता।।  
सभी द्रव्य अपनी क्रमनियमित पर्यायों के कर्ता हैं।  
फेरफार कर सके नहीं पर उत्पादक हैं कर्ता हैं।। ११।।

जिसका जो जैसा होना जो केवलज्ञानी ने जाना।  
उसका वह वैसा होगा, न होय किसी का मनमाना।।  
यद्यपि हम अपने परिणामों के कर्ता हैं उत्पादक हैं।  
फेरफार कर सकें नहीं रे हम तो केवल ज्ञायक हैं।। १२।।

भूतकाल की वर्तमान की अर भविष्य की जाने जो।  
तीनलोक की तीनकाल की सारी बातें जाने जो।।  
वे ही हैं सर्वज्ञ और उनको ही जिनवर कहते हैं।  
जिनवर की वाणी जिनवाणी उसको आगम कहते हैं।। १३।।

जिनवाणी में कदम-कदम पर ऐसी बातें आई हैं।  
समोशरण में दिव्यध्वनि में जिनवर ने बतलाई हैं।।  
उनमें शंका आशंका को है कोई अवकाश नहीं।  
किसी तरह की मीन-मेख का इसमें कोई काम नहीं।। १४।।

अरे द्वारिका नगरी होगी भस्म आग की लपटों से।  
नेमिनाथ ने बता दिया था बारह वर्षों पहले से।।  
उसको नहीं बचा पाये थे सभी द्वारिका के दिग्गज।  
अर्द्धचक्रवर्ती नारायण श्रीकृष्ण-से शक्तिपुरुष।। १५।।

आदिनाथ ने भरी सभा में बता दिया सारे जग को।  
मारीच महावीर होगा रे कोटि-कोटि सागर पहले।।  
इसका तो निष्कर्ष यही सब पहले से ही नियमित था।  
कोटि-कोटि सागर पहलेसेसब घटनाक्रम निश्चित था।। १६।।

अरे पुराणों में पग-पग पर भरी पड़ी ऐसी बातें।  
जिनसे यह साबित होता है आगे-पीछे सब निश्चित।।  
इसमें शंका-आशंका को है कोई स्थान नहीं।  
सबकुछ पहले से नक्की है जग को कुछ भी भान नहीं।। १७।।

तीर्थकर चौबीस होंय अर चक्रवर्ती बारह होते।  
नारायण-प्रतिनारायण बलभद्र आदि नौ-नौ होते।।  
यह भी तो सब लिखा हुआ है कौन कहाँ कब-कब होंगे।  
परिवर्तन की बात नहीं है जहाँ-जहाँ जब-जब होंगे।। १८।।

दश कोड़ाकोड़ी सागर तक कौन कहाँ कब क्या होगा।  
आगामी चौबीसी में तीर्थकर कौन-कौन होगा।।  
इन सबकी पूरी नामावलि जिन आगम में आई है।  
सौ इन्द्रों की उपस्थिति में केवलि ने बतलाई है।। १९।।

जिसका जहाँ और जब जैसा जो कुछ होने वाला है।  
उसका वहाँ वही सब होगा नहीं बदलने वाला है।।  
उसको इन्द्र-जिनेन्द्र कोई भी कभी बदल न पावेंगे।  
जो मानेंगे वे ज्ञानी अज्ञानी मान न पावेंगे।। २०।।

कार्तिकेय अनुप्रेक्षा में यह साफ-साफ ही बात कही।  
कदम-कदम पर जिन आगम में ऐसी बातें कही गईं।।  
उनसे सहज सिद्ध होता सब पर्यायें क्रमनियमित हैं।  
आगे कब क्या कैसा होगा सब ही बातें निश्चित हैं।। २१।।

यदि न मानें इन बातों को आगम में शंका होगी।  
यदि आगम को भी न मानें सारी बात खतम होगी।।  
जिनदर्शन का राजमहल तो आगम पर है टिका हुआ।  
आगम पर शंका करने पर जिनदर्शन का क्या होगा?।। २२।।

वीतराग सर्वज्ञ प्रभु की वाणी ही जिन आगम है।  
आगम के अनुसार हमारे गुरुओं का भी जीवन है।।  
आगम में शंका होने पर तीनों पर शंका होगी।  
देव-शास्त्र-गुरु सर्वोपरि हैं इसमें आशंका होगी।। २३।।

जिन आगम को आगे रखकर क्या-क्या जाना है हमने।  
जिन आगम आधार बनाकर क्या-क्या माना है हमने।।  
एक बार गंभीर भाव से इसपर भी सोचो भाई!।  
यह भी है गंभीर बात जो बात सामने है आई।। २४।।

छह महिना अर आठ समय में छह सौ आठ जीव भाई।  
नितनिगोद से निकलेंगे अर इतने ही शिवपुर जाई।।  
यह भी बात पूर्णतः पक्की इसमें कोई फेर नहीं।  
अधिक नहीं जा सकते हैं अर कम भी न जाये भाई।। २५।।

29

सभी गति के सब जीवों की संख्या भी निश्चित भाई।  
वह भी कम-बढ़ हो न सकेगी कोई कुछ करले भाई।।  
स्वर्ग-नरक के सब जीवों की संख्या निश्चित होती है।  
उसमें बदलाबदली भाई कभी नहीं हो सकती है।। २६।।

बदलाबदली होय कभी न - यह अनन्त सुखदायी है।  
परिवर्तन की बात सोचना ही अनन्त दुखदायी है।।  
परिवर्तन का भाव छोड़ यह परम सत्य स्वीकार करो।  
जो कुछ जब जैसा होना सब उसको अंगीकार करो।। २७।।

अंगीकृत यह परम सत्य सुख-शान्ति लायेगा जीवन में।  
आकुलता होगी सहज दूर आनन्द आयेगा जीवन में।।  
आनन्द आयेगा जीवन में समभाव आयेगा जीवन में।  
अरे अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द आयेगा जीवन में।। २८।।

पर्यायों के परिवर्तन की क्रमिक व्यवस्था अद्भुत है।  
क्रम भी तो नियमित है यह अद्भुत से भी अद्भुत है।।  
क्रम से है अर क्रम नियमित है हमें नहीं कुछ करना है।  
हम अपने में ही रहें सहज बस सहजभाव से रहना है।। २९।।

यद्यपि कुछ करना नहीं हमें पर पूरी बात समझना है।  
अर पूरी बात समझकर भाई ज्ञाता-दृष्टा रहना है।।  
अरे आत्मा का स्वभाव तो ज्ञाता-दृष्टा रहना है।  
करने-धरने के विकल्प न पर में हमें उलझना है।। ३०।।

पर में तो नहीं उलझना है न पर में जमना-रमना है।  
यदि सहज जानना हो जावे तो ज्ञाता-दृष्टा रहना है।।  
यद्यपि अपनी पर्यायों के कर्त्ता-धर्त्ता हम होते हैं।  
पर उनमें अपनी मर्जी से कुछ भी तो नहीं कर सकते हैं।। ३१।।

कुछ भी तो नहीं कर सकते हैं जो नियमित क्रम में होता है।  
उसके ही कर्त्ता कहलाते उसके ही कर्त्ता होते हैं।।  
ऐसे कर्त्ता कहलाने में है हमें कोई उत्साह नहीं।  
हमें कोई रस नहीं अरे हमको अब कोई चाह नहीं।। ३२।।

इच्छानुसार कुछ नहीं होता - यह बात समझ में है आई।  
इसको ही कर्त्ता कहते हैं अर यही अकर्त्ता है भाई।।  
तद्रूप परिणामित होते हैं इससे कर्त्ता कहलाते हैं।  
कुछ फेर-फार कर सके नहीं इसलिये अकर्त्ता हैं भाई।। ३३।।

एक बार गहराई से यह तथ्य समझ में आ जावे।  
एक बार गहराई से यह सत्य समझ में आ जावे।।  
एक बार चिन्तन की धारा इसी दिशा में मुड़ जावे।  
एक बार श्रद्धान हमारा इस धारा में जुड़ जावे।। ३४।।

एक बार जीवनधारा भी इसी दिशा में जुड़ जावे।  
जहाँ जा रहे थे अबतक अब मार्ग हमारा मुड़ जावे।।  
करने-धरने का बोझ हमारे सिर से पूर्ण उतर जावे।  
और सहजता इस जीवन में सहजभाव से आ जावे।। ३५।।

सहजभाव से ज्ञाता-दृष्टा रहना ही है धर्म यहाँ।  
और नहीं कुछ करना है बस एकमात्र यह कर्म यहाँ।।  
सहज भाव ही जीवन धन है यह ही आत्म धर्म यहाँ।  
धर्म कर्म है जो कुछ भी यह जिनदर्शन का मर्म यहाँ।। ३६।।

हमें नहीं कुछ करना है - यह बात समझ में नहीं आती।  
हमें नहीं कुछ करना है - यह बात चित्त को नहीं भाती।।  
अरे हाथ पर हाथ रखे हम कैसे बैठे रह सकते?।  
इस हलचल वाली दुनियाँ में हम चुप कैसे रह सकते?।। ३७।।

हम रहते थोड़ी देर शान्त तो चित्त मचलने लगता है।  
हम निर्विकल्प निष्काम रहें तो भाव बदलने लगता है।।  
तुम तो कहते कुछ करो नहीं पर किये बिना होगा कैसे?  
तुम कहते आत्मराम भजो<sup>१</sup> पर भजे बिना होगा कैसे?।। ३८।।

भजना भी तो करना है आखिर तुम करने पर आये।  
न करना कहते रहे किन्तु आखिर हम करते ही आये।।  
हम बहुत सोचते हैं भाई आखिर 'न करना' हो कैसे?।  
है प्रश्न हमारा तुम से ही 'न करना' करना हो कैसे?।। ३९।।

दुनियाँ भर का बोझ अपने माथे पर लेकर चलना।  
जबकि अपने हाथ नहीं है कुछ भी तो करना-धरना।।  
बिना प्रयोजन उलझे रहना अर विकल्प करते रहना।  
जिसमें कोई सार नहीं है उनमें ही उलझे रहना।। ४०।।

१. आत्मा का ध्यान करो।

मैं करता हूँ कर सकता हूँ – ऐसा तुमने अब तक माना।  
मैं ही तो कर्त्ता-धर्त्ता हूँ – ऐसा तुमने अब तक जाना।।  
जो कुछ भी बन सका खूब करके देखा जाना-माना।  
क्या कर पाये अब तक हे भाई अपने मन का मनमाना।। ४१।।

लाख बात में एक बात तेरे मन के अनुकूल हुई।  
पर अनेक बातें हैं जो तेरे मन के प्रतिकूल हुईं।।  
अनुकूल का कर्त्ता बनना प्रतिकूल की बात नहीं।  
यह कैसा है न्याय कि इसमें तो कोई अनुपात नहीं।। ४२।।

अपनी क्रमनियमित पर्यायें भी यद्यपि तुम ही करते हो।  
जो कुछ क्रम में होना नक्की उसके ही कर्त्ता-धर्त्ता हो।।  
पर के कर्त्ता तुम नहीं किन्तु अपने कर्त्ता तो हो ही तुम।  
होनेवाले परिवर्तन के तुम ही तो कर्त्ता-धर्त्ता हो।। ४३।।

कर्त्तापन से तो नहीं, बन्धु कर्त्तापन का यह बोझा तो।  
है तुम पर नहीं – जानना है, जिससे उतरे यह बोझा तो।।  
इस बोझे से तुम मुक्त रहो – हम तो बस यही चाहते हैं।  
तुम गहराई से सोचो तो बस हम तो यही चाहते हैं।। ४४।।

अबतक हम यही समझते थे मति के अनुसार गति होती।  
पर अब तो ऐसा लगता है गति के अनुसार मति होती।।  
जब तीन-तीन भव आगे के दिख जाते हैं भवि जीवों को।  
इसका मतलब है साफ कि भव तो पहले से ही नक्की हैं।। ४५।।

जिस भव में हमको जाना है उसके अनुसार भाव होंगे।  
भाव भवों से बंधे हुये भव भी बंधते हैं भावों से।।  
यदि दो तरफा ही बंधन है तो वह निश्चित ही नक्की है।  
भावों का होना भव होना – यह बात एकदम पक्की है।। ४६।।

भव पहले से ही नक्की है भावों को तो अब होना है।  
भव के अनुकूल भाव होवें – यह बात जरूरी होना है।।  
जब पता नहीं है कि हमको आखिर किस भव में जाना है।  
और वहाँ जाने को अब कैसे भावों को करना है।। ४७।।

सब होगा सहज अरे इसमें चिन्ता न आपको करनी है।  
करना-धरना कुछ नहीं बन्धु जो होना है सो नक्की है।।  
तुम को तो अपने जीवन में बस सहज एकदम रहना है।  
जानो-देखो जानो-देखो बस सहज जानते रहना है।। ४८।।

बस सहज जानते रहना है बस सहज देखते रहना है।  
आत्म का तो बस काम यही ज्ञाता-दृष्टा ही रहना है।।  
बस ज्ञाता-दृष्टा रहना ही है आत्मध्यान का रूप यही।  
बस आत्म में जमना-रमना है आत्मध्यान का रूप सही।। ४९।।

यह ही है असली ध्यान इसी से केवलज्ञान उपजता है।  
इससे ही शान्ति प्राप्त होती इससे आनन्द बरसता है।।  
मोक्षमार्ग में चलने वाले यही निरन्तर करते हैं।  
इससे ही मुक्ति मिलती है जहाँ नंतकाल तक रहते हैं।। ५०।।

क्रम नियमित पर्यायों की यह चर्चा अजब निराली है।  
जो समझेंगे भव्य उन्हें यह मुक्ति दिलाने वाली है।।  
जिनका अनन्त संसार शेष उनको स्वीकार नहीं होगी।  
यह परम सत्य है बात किन्तु स्वीकृत स्वकाल में ही होती।। ५१।।

जिनका अनन्त संसार शेष उनको स्वीकार नहीं होगी।  
ऐसा कहकर उन लोगों की निन्दा क्यों करते हो भाई।।  
जो नहीं आपकी बात सुने उनकी निन्दा तो ठीक नहीं।  
समझाना है तो समझाओ पर ऐसा कहना ठीक नहीं।। ५२।।

जिनको भव-भव में रुलना है उनको स्वीकार नहीं होती।  
जिनका अनन्त संसार शेष उनको स्वीकार नहीं होती।।  
यह निन्दा के हैं वचन नहीं, है वस्तु तत्त्व का प्रतिपादन।  
परमागम में किया गया इस अटल तथ्य का उद्घाटन।। ५३।।

हम तो उसको ही बता रहे निन्दा का कोई भाव नहीं।  
ऐसा क्यों? ऐसे प्रश्नों का हे भाई! कोई जवाब नहीं।।  
वस्तु के स्वभाव में भाई कोई तर्क नहीं चलता।<sup>१</sup>  
और दूसरी वस्तु का कोई अधिकार नहीं चलता।। ५४।।

सब भावों को पर्यायों को देखो-जानो देखो-जानो।  
कोई विकल्प मत करो सहज देखो-जानो देखो-जानो।।  
इसमें भी कुछ करो नहीं बस सहज जानना होने दो।  
कुछ भी कोशिश मत करो परन्तु सहज जानना होने दो।। ५५।।

१. 'स्वभावोऽतर्कगोचरः' : समन्तभद्राचार्य : आप्तमीमांसा, श्लोक-१००

निन्दा की बातें मत सोचो जो बता रहे उसको जानो।  
राग-द्वेष से ऊपर उठ अपने स्वरूप को पहिचानो।।  
यद्यपि सब जीव एक से हैं पर पर्यायें हैं जुदी-जुदी।  
वे सब स्वकाल में होती हैं मर्यादायें हैं जुदी-जुदी।। ५६।।

छह महीना अर आठ समय में छह सौ आठ मोक्ष जाते।  
सबके मुक्ति में जाने के लगभग समय भिन्न होते।।  
हमको जाने की जल्दी है तो कुछ उपाय करना होगा।  
जैसे भी हो मुक्तिरमा का शीघ्र वरण करना होगा।। ५७।।

ऐसा ही जिसका चिन्तन उसको स्वकाल स्वीकार नहीं।  
उसको भव-भव में रुलना है जिसको स्वकाल स्वीकार नहीं।।  
जब स्वकाल होगा तब उसको सहज सहजता आवेगी।  
क्रमनियमित पर्यायों की श्रद्धा उसको हो जावेगी।। ५८।।

यह पहले से ही नक्की था तीर्थंकर महापद्म होंगे।  
पर उसके पहले नरक गति में श्रेणिक को जाना होगा।।  
जो होना है सो तदनुसार कर्मों का बंधन यथासमय।  
हो जावेगा, पर होगा न कोई परिवर्तन किसी समय।। ५९।।

इन बातों का जब पता चला समदृष्टि राजा श्रेणिक को।  
तो सहजभाव से सभी विषय स्वीकार हो गये हैं उनको।।  
यह है क्रमनियमित पर्यायों की स्वीकृति रे सच्चे मन से।  
यह ही है सम्यग्ज्ञान और यह ही है सम्यग्दर्शन से।। ६०।।



राजा श्रेणिक अर प्रथम नरक, श्री महापद्म तीर्थकर की।  
तीनों क्रमनियमित पर्यायों तो अनादिकाल से नक्की थीं।।  
तीनों में कुछ अदलाबदली ना किसी रूप में संभव थी।  
इस महासत्य की सहजभाव से सहज स्वीकृति पक्की थी।। ६१।।

इस सहज स्वीकृति का पक्कापन जीवन की आधारशिला।  
इसके बिना सहज जीवन को ना जीवन आधार मिला।।  
दृढ़ श्रद्धा दृढ़ ज्ञान और दृढ़ चर्या के आधार बिना।  
आनन्दमयी दृढ़ जीवन का रे ना कोई आधार बने।। ६२।।

यदि होना है निश्चिन्त पूर्ण तो क्रमनियमित पर्यायों को।  
आदिकाल से नंतकाल तक नियमित ही जानो-मानों।  
परिवर्तन करने के भार से अपने को नित मुक्त रखो।  
अर अपने उपयोग योग को अपने में संयुक्त रखो।। ६३।।

सहज सरल जीवनधारा को सहज सरल ही रहने दो।  
अमृतमय जीवन सरिता को सहज तरल ही बहने दो।।  
लहरें उठें सहज उठने दो तरल तरंगित रहने दो।  
जितना उछले यह ज्ञानोदधि उतना उसे उछलने दो।। ६४।।

उसे नियंत्रित करने का ना यत्न करो न सोचो ही।  
कुछ विकल्प मत करो बन्धुवर उसको खूब उछलने दो।।  
अरे उछलकर कहाँ जायेगा अपनी सीमा के बाहर।  
अपनी सीमा में सीमित वह सचमुच ही सीमन्धर है।। ६५।।

33

सभी बंधे हैं अपनी-अपनी क्रमनियमित पर्यायों में।  
एक-एक पर्याय बंधी है अपने क्षण अपने क्रम में।।  
एक समय पहले या पीछे कोई नहीं कर सकता है।  
यह अज्ञानी जगत व्यर्थ में ही तो स्वयं उलझता है।। ६६।।

अरे आज तक क्या कर पाया और अभी क्या कर लोगे?  
एक बार तुम सोचो तो क्या किया और क्या कर लोगे?  
अबतक असैनि पर्यायों में ही काल अनन्त बिताया है।  
और भावि में सिद्धदशा में भी तो कुछ नहीं करना है।। ६७।।

थोड़ा सा यह काल मिला है इसमें क्यों विकल्प करते?  
क्रमनियमितता पर्यायों की क्यों स्वीकार नहीं करते?।।  
यदि होनहार होगी हे भाई! काल निकट आया होगा।  
इस परम सत्य की स्वीकृति का सम्यक्पुरुषार्थ जगा होगा।। ६८।।

सम्यक् निमित्त तो हाजिर ही है सुनने का अवसर आया।  
हर कीमत पर इसे समझने का सद्भाव तुम्हें आया।।  
लगता है सद्भाग्य तुम्हारा अब आने ही वाला है।  
अब तुमको भी परमसत्य यह स्वीकृत होनेवाला है।। ६९।।

हैं प्रश्न तुम्हारे सहज सरल जिज्ञासा प्रस्तुत करते हैं।  
तत्त्वज्ञों में समझाने का भाव जागृत करते हैं।  
विनयपूर्वक सच्चे दिल से कान लगाकर सुनते हों।  
अर संबंधित विषय वस्तु का चिन्तन करते रहते हो।। ७०।।

वृत्ति और प्रवृत्ति तुम्हारी संगति करने लायक है।  
साधर्मी वात्सल्य तुम्हारा अपनाने के लायक है॥  
रहन-सहन अर खान-पान भी सात्विक और अहिंसक है।  
भव्यों जैसा भव्य आचरण भवि सन्मार्ग प्रदर्शक है॥ ७१॥

इससे लगता है अतिशीघ्र तुम तत्त्व समझने वाले हो।  
क्रमनियमित पर्यायों का भी मर्म समझने वाले हो॥  
इस महासत्य को स्वीकृत कर सम्यकपथ पाने वाले हो।  
अधिक कहें क्या कुछ भव में मुक्ति में जाने वाले हो॥ ७२॥

जिनका संसार शेष होता उनको यह बात अखरती है।  
कितना भी समझाव उन्हें उनको यह बात न जँचती है॥  
उनसे कुछ बात करो भाई तो गला पकड़ने लगते हैं।  
अर बात-बात पर आपस में वे स्वयं झगड़ने लगते हैं॥ ७३॥

उनसे कुछ बातें करने से या उनकी बातें सुनने से।  
कुछ लाभ न होने वाला है इस सबमें व्यर्थ उलझने से॥  
हमको तो निर्णय करना है आगे कब क्या होगा कैसे?।  
जिनवाणी में जो बतलाया उसकी तह में जाना कैसे?॥ ७४॥

आगे का सब कुछ निश्चित है केवलज्ञानी ने जाना है।  
यह बात एकदम परम सत्य हमने भी तो यह माना है॥  
इस परम सत्य को स्वीकृत कर बस सहज जानते रहना है।  
यह सहज भाव ही जीवन है जिनवाणी का यह कहना है॥ ७५॥

‘भावी पर्यायें भी नियमित’ हम ऐसा माने नहीं किन्तु।  
निज आतम का ही ज्ञान-ध्यान एवं पूरा श्रद्धान करें॥  
देव-शास्त्र-गुरुकी भक्ति अर जिनवाणी का श्रवण-मनन।  
सदाचारमय जीवन एवं खान-पान का ध्यान रखें॥ ७६॥

इसमें क्या है कमी अरे हम भी आतम के साधक हैं।  
मुक्तिमार्ग के पथिक और हम आतम के आराधक हैं॥  
शक्ति के अनुसार व्रतादिक पालें एवं दान करें।  
उपवासादिक करें और आखिर मुक्ति का वरण करें॥ ७७॥

यह सब तो है ठीक किन्तु क्रमनियमितपर्यायों को।  
यदि मानोगे नहीं धर्म का मर्म समझ न पावोगे॥  
ढोते रहना अरे निरन्तर कर्त्तापन के बोझे को।  
प्राप्त नहीं कर पावोगे तुम आतम के सच्चे सुख को॥ ७८॥

कर सकते कुछ नहीं किन्तु करने का बोझा माथे पर।  
रखकर विकल्प करते रहना रोते रहना तुम जीवनभर॥  
सदाचारमय जीवन से तुम स्वर्ग संपदा पा लोगे।  
पर कर्त्तापन का बोझ उतारे बिना मुक्ति ना पावोगे॥ ७९॥

लगता है भाई अभी किनारा भवसागर का पास नहीं।  
भवसागर के नंत दुखों का तुम्हें रंच आभास नहीं॥  
एक बार गंभीर भाव से सोचो और विचारो तो।  
क्रमनियमित पर्यायों का यह परमसत्य स्वीकारो तो॥ ८०॥

क्रमनियमित पर्यायों का स्वीकार परम सुखदायक है।  
और अकर्ताभाव बन्धुवर भवदुःखों का नाशक है॥  
अरे अकर्ताभाव अनाकुल मुक्ति रमा का भाई है।  
उसकी भगनी यह मुक्तिरमा बस तुमको लेने आई है॥ ८१॥

चक्रवर्ती की कन्या तुमको तिलक लगाने आई है।  
मुँह मत फेरो अरे बन्धुवर तुमको वरने आई है॥  
अरे अरे सद्भाग्य तुम्हारे पर हमको ईर्ष्या होती।  
इस पर भी तुम इठलाते हो तुमको कुछ प्रज्ञा<sup>१</sup> होती॥ ८२॥

एक बार अवसर आता है उसे चूकना योग्य नहीं।  
अरे उपेक्षाभाव तुम्हारा इस अवसर के योग्य नहीं॥  
अगर नहीं स्वीकार तुम्हें तो तुम पर हम क्यों रोष करें।  
होनहार ही ऐसी होगी - यही मान सन्तोष करें॥ ८३॥

अरे जानना सहज भाव से है इतना आसान नहीं।  
जाने अर उद्वेलित न हो - यह इतना आसान नहीं॥  
अरे अप्रभावित रह जाने और जानकर भी भाई।  
अरे प्रभावित होंय नहीं यह ही है सहजभाव भाई॥ ८४॥

जानें बस केवल जाने, पर प्रतिक्रिया कुछ भी न हो।  
जाने पर बस रहे जानता रंचमात्र असहज न हो॥  
असहज न हो विचलित न हो आकुल-व्याकुल भी न हो।  
शान्त निराकुल रहे - अरे बस यही सहज जानना है॥ ८५॥

सहज जानना धर्मध्यान है सहज जानना सामायिक।  
सहज जानना स्वाध्याय यह काम नहीं है सामाजिक॥  
यह संवर है निर्जरा अरे यह तो है सच्चा मुक्तीमग।  
यह तो है शुद्धभाव भाई यह सही दिशा में उठता पग॥ ८६॥

यह अत्यन्त सरल है किन्तु अनभ्यास से है दुर्लभ।  
रुचिपूर्वक अभ्यास करे तो जानो यह अत्यन्त सुलभ॥  
'दुर्लभ है या सुलभ' अरे इस चिन्तन से कुछ लाभ नहीं।  
जिनको चलना है इस मग पर क्या उनको व्यर्थ प्रलाप नहीं?॥ ८७॥

सुलभ होय अथवा अतिदुर्लभ हमको जब करना ही है।  
तब इसका विचार क्या करना हमको तो करना ही है॥  
तन से मन से कैसे भी हो तुम पक्का निश्चय कर लो।  
हो जावो तैयार बन्धुवर इसके लिये कमर कस लो॥ ८८॥

सहज जानना सहज जानना सहज जानना ही तप है।  
है इसमें कोई कष्ट नहीं न आकुलता न आतप है॥  
है शान्त शान्त रे अरे शान्त है रंचमात्र संताप नहीं।  
रे परमशान्त इस शान्तदशा में ताप नहीं आताप नहीं॥ ८९॥

ज्ञानमयी आनन्दमयी सर में सरिता में सागर में।  
सहज जानने की प्रवृत्ति जहँ देखो वही उजागर मैं॥  
मैं मैं मैं ही नित भास रहा मैं व्याप रहा अपनेपन में।  
मैं व्याप रहा मैं भास रहा बस मैं ही अपने जीवन में॥ ९०॥

जो ज्ञेय अनादि सुनिश्चित हैं वे सहज जानने में आते।  
पलटापलटी का भाव नहीं वे सहज सहज जाने जाते॥  
जो निश्चित हैं वे सब जाने पर सहज सहजता भंग न हो।  
रे सहज सहजता खण्डित हो ऐसा कोई परसंग<sup>१</sup> न हो॥ ९१॥

सहज सहजता मुनिधर्म अर सहज सहजता श्रेणी है।  
अरे सहजता वैसी है जैसी मस्तक पर वेणी<sup>२</sup> है॥  
प्रत्येक द्रव्य की सहज परिणति उसकी गौरव गाथा है।  
सहज जानना वैसा है जैसा शरीर पर माथा है॥ ९२॥

इस दुनियाँ में नित्य निरंतर कुछ-न-कुछ होता रहता।  
दुर्घटनायें घटनायें भी जगह-जगह होती रहतीं॥  
रे आँधी तूफान निरन्तर आया-जाया करते हैं।  
जिनमें लाखों जीव-जन्तु यों ही मर जाया करते हैं॥ ९३॥

जीव जीव को खा जाते हैं क्या-क्या पाप नहीं होते।  
सर्दी-गर्मी जीना-मरना रे नित्य लगे ही हैं रहते॥  
इनकी सबकी प्रतिक्रियायें साधक पर न होती हैं।  
वे तो इन सब बातों को भी सहज जानते रहते हैं॥ ९४॥

जो जग में होता रहता है सभी जानते हैं भगवन।  
पर उनके सुखसागर में तो कभी नहीं होती अड़चन॥  
उस आनन्द महोदधि में आनन्द घुमड़ता रहता है।  
रे परमात्म के अन्तर में आनन्द उमड़ता रहता है॥ ९५॥

अपने सिर का बोझ उतारो तुम्हें नहीं कुछ करना है।  
क्रमनियमितता की नौका से भवदधि पार उतरना है॥  
क्रमनियमितता की सच्चाई सच्चे दिल से स्वीकार करो।  
उसको अपनाकर जीवन में इस भवसागर को पार करो॥ ९६॥

श्रद्धा के लेवल पर तुमको जब महा सत्य स्वीकृत होगा।  
तुमको इस लौकिक जीवन में हलकेपन का अनुभव होगा॥  
चिंता की रेखाओं के बल ढीले होंगे फीके होंगे।  
चिन्ता बदलेगी चिन्तन में अर रोम-रोम पुलकित होंगे॥ ९७॥

आनन्द महोदधि उमड़ेगा श्रद्धा के बादल गरजेंगे।  
अनुभव की बिजली चमकेगी रिम-झिम रिम-झिम घन बरसेंगे॥  
समकित का सावन आवेगा अन्तरमन आनन्दित होगा।  
शिवमारग की पगडण्डी पर धीरे-धीरे चलना होगा॥ ९८॥

जिनका क्षयोपशम होगा एवं ज्ञेय सुनिश्चित जो होंगे।  
सहज ज्ञानमय आत्म उनको सहजभाव से जानेंगे॥  
सहजभाव से सहजज्ञान में सहज सहजता आवेगी।  
तब उसकी गौरव गरिमा भी जीवन में छा जावेगी॥ ९९॥

सहजभाव से निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान प्रगट होंगे।  
प्रगटेगा चारित्र आत्मा में जमने से रमने से॥  
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र जब परमारथ से प्रगटेंगे।  
और पूर्णता को पाकर हम मुक्तिरमा से परणेंगे॥ १००॥

( दोहा )

क्रमनियमित पर्याय का चिन्तन विविध प्रकार।  
इसप्रकार पूरा हुआ जिनदर्शन का सार॥ १०१॥  
महावीर का जन्मदिन दो हजार उन्नीस।  
शुक्ला चैत्र त्रयोदशी पूर्ण हुआ जगदीश॥ १०२॥

## पंचम शतक : श्रमण शतक

( दोहा )

श्रमण परम्परा के जनक, भवसागर के पार।  
 श्रमण शिरोमणि ऋषभ जिन, वन्दन बारम्बार॥ १॥

श्रमण संस्कृति के प्रमुख, भवसागर के तीर।  
 कोटि-कोटि वन्दन करूँ, महाश्रमण महावीर॥ २॥

महावीर पथ के पथिक, जिनके भव का अन्त।  
 श्रमण संस्कृति में रंगे, नग्न दिगम्बर सन्त॥ ३॥

अपने में अपनत्व है, अपने में स्वाधीन।  
 सहज सरल पथ के पथिक, अपने में ही लीन॥ ४॥

जिनकी जीवनधार में, श्रम का न हो लेश।  
 नख से शिख तक श्रमण के, नग्न दिगम्बर वेश॥ ५॥

श्रम आश्रम दोनों नहीं, अपने में ही मग्न।  
 केवल अपनी साधना में रहते हैं संलग्न॥ ६॥

आश्रम घर का रूप है, घरत्यागी मुनिराज।  
 श्रमणों के घर हो नहीं, भाषी श्री जिनराज॥ ७॥

घर मकान का रूप है, आश्रम होय मकान।  
 गृहत्यागी कैसे रखे, आश्रम रूप मकान॥ ८॥

37

जिसमें श्रम का नाम ना, वह श्रमणों का पंथ।  
 श्रम न श्रम न श्रमण हैं, श्रमणों का शिवपंथ॥ ९॥

श्रम आकुलतारूप है, कष्टरूप दुखरूप।  
 कष्टरूप श्रम किसतरह, होवे श्रमणस्वरूप॥ १०॥

उनको कहते हैं श्रमिक, जो श्रम करते नित्य।  
 श्रमिक श्रमण होते नहीं, यह परिपूरण सत्य॥ ११॥

कुछ करने का भार जब, जिनके शिर ना आज।  
 उन्हें श्रमिक कैसे कहें, वे तो शिर के ताज॥ १२॥

श्रमिक बताना श्रमण को, श्रमणों का अपमान।  
 श्रमण संत भवि नित करो, श्रमणों का सन्मान॥ १३॥

सहजभाव से सहज ही, सहज परिणामन होय।  
 यही सहजता धर्म है, इसमें श्रम न होय॥ १४॥

सहजभाव से प्रगट हो, सहजानन्द अपार।  
 जिसमें श्रम अनुभव न हो, वह है श्रमणाचार॥ १५॥

श्रम न हो का अर्थ है, सहज होय आचार।  
 जो तनाव से रहित हो, वह है श्रमणाचार॥ १६॥

सहज आचरण श्रम रहित, सहजानन्द स्वरूप।  
 श्रम दुख का ही रूप है, श्रम है खेदस्वरूप॥ १७॥

श्रम जल से होते रहित, महाश्रमण जिनराय।  
 श्रम तो खेद स्वरूप है, श्रम दुख की पर्याय॥ १८॥

सहज शान्त मुनिराज को सहज थकावनहार।  
 श्रम से क्या है प्रयोजन, वे तो सदाबहार॥ १९॥

श्रम ण<sup>१</sup> श्रम ण श्रमण हैं, महाश्रमण जिनराज।  
 ज्ञान-ध्यान तप लीन मुनि, श्रमणों में सरताज॥ २०॥  
 जिनका जीवन सहज है, अनुद्दिष्ट आहार।  
 सहज सावधानी रहे, सरल सत्य व्यवहार॥ २१॥  
 पर में कुछ करना नहीं, पूर्ण अकर्त्ताभाव।  
 अपने में भी है नहीं, परिवर्तन का भाव॥ २२॥  
 जब कुछ करना है नहीं, सहज-सहज स्वीकार।  
 श्रम को ना अवकाश है, श्रम ना है स्वीकार॥ २३॥  
 रंच मात्र भी श्रम नहीं, सहज श्रमण मुनिराज।  
 सहज शान्त आनन्द में, विचरे श्री ऋषिराज॥ २४॥  
 शारीरिक श्रम है नहीं, है पूरा विश्राम।  
 ज्ञान-ध्यान को छोड़कर अन्य न कोई काम॥ २५॥  
 विचरण में भी श्रम नहीं, शक्ति के अनुसार।  
 भूमि शोधकर निस्पृही सीमित करें विहार॥ २६॥  
 जाने की जल्दी नहीं, श्रम से रहित विहार।  
 एक आत्मा ही रहे, चिन्तन का आधार॥ २७॥  
 कोइ किसी का न करे अर अपनी पर्याय।  
 जो जब जैसी हो प्रभो सभी सहज स्वीकार॥ २८॥  
 उसमें भी बदलाबदल करने का न भाव।  
 जब कुछ करना ही नहीं, श्रम का सहज अभाव॥ २९॥

१. न = नहीं

नग्न दिगम्बर श्रमणजन, भविजन तारणहार।  
 भविजीवों को मुक्तिमग, सदा बतावनहार॥ ३०॥  
 मुक्तिमार्ग श्रमरूप न, वह है आनन्दरूप।  
 सहजरूप सुखरूप है, सहजानन्द स्वरूप॥ ३१॥  
 मुक्तिमार्ग थित संतजन, रहें सदा सन्तुष्ट।  
 साम्यभाव सबसे रखें, रुष्ट होंय न तुष्ट॥ ३२॥  
 जो कुछ है या हो रहा, सबमें समताभाव।  
 जिनके है वे सन्तजन, सदा जगावनहार॥ ३३॥  
 जब कोई अनुकूल ना, कोई ना प्रतिकूल।  
 इष्ट-अनिष्ट की कल्पना, कैसे हो उद्भूत॥ ३४॥  
 जब सब में समभाव है, सब ही हैं समरूप।  
 किस को मानें इष्ट हम, और अनिष्ट स्वरूप॥ ३५॥  
 कोई वस्तु है नहीं, इष्टानिष्ट स्वरूप।  
 राग-द्वेष कैसे करें, सब वस्तु समरूप॥ ३६॥  
 राग-द्वेष के वास्ते, नहीं कोई अवकाश।  
 इसको कहते सन्तजन, सबमें समताभाव॥ ३७॥  
 सन्तों की सम्पत्ति यह, साम्यभाव समरूप।  
 सन्तों की यह सम्पदा, है समभाव स्वरूप॥ ३८॥  
 यह समभाव स्वभाव है, यह ही समताभाव।  
 राग-द्वेष के परिणमन का हो पूर्ण अभाव॥ ३९॥

सहजभाव से प्राप्त हो, ऐसा समताभाव।  
 समताभाव प्रभाव से, साम्यभाव समभाव॥ ४०॥  
 वीतरागमय भाव से, प्रगटे सहजानन्द।  
 सहज शान्ति की प्राप्ति हो, प्रगटे परमानन्द॥ ४१॥  
 सहज शान्ति सुखमयदशा, परमानन्द अपार।  
 मुक्तिरूप यह भाव ही, मुक्ति मिलावनहार॥ ४२॥  
 मुनिवर का सुख शान्तिमय, यही भाव समभाव।  
 साम्यभाव भी यही है, यह है समताभाव॥ ४३॥  
 साम्यभाव के धनी हैं, सभी श्रमण भगवन्त।  
 समझो उनके आ गया, भवसागर का अन्त॥ ४४॥  
 सम्यग्दृष्टि जीव सब, निर्भय हों निशंक।  
 उन्हें प्रभावित न करें, आशंका आतंक॥ ४५॥  
 सभी द्रव्य स्वाधीन हैं, स्वयं परिणमित होय।  
 अर अपने परिणमन के, कर्त्ता-धर्त्ता होय॥ ४६॥  
 जब जो कुछ जिस द्रव्य का, जैसा होना होय।  
 तब तैसा उस द्रव्य का, सदा परिणमन होय॥ ४७॥  
 अरे सुनिश्चित है सभी, जाना है जिनदेव।  
 सब द्रव्यों का परिणमन, होता है स्वयमेव॥ ४८॥  
 सब द्रव्यों के परिणमन, सभी ज्ञान के ज्ञेय।  
 सर्वज्ञों के प्रतिसमय, बनते हैं स्वयमेव॥ ४९॥

अल्पज्ञों के भी नियत, होते हैं सब ज्ञेय।  
 स्वसमय अनुसार ही, वे ही बनते ज्ञेय॥ ५०॥  
 उनमें भी बदलाबदल, ना हो किसीप्रकार।  
 जो होना है जो नियत, होगा उसीप्रकार॥ ५१॥  
 महिमा केवलज्ञान की, जग में अपरंपार।  
 वह अनन्त आनन्दमय, महके सदाबहार॥ ५२॥  
 सभी द्रव्य पर्यय सहित, सुगुण अनन्तानन्त।  
 नित्य असंख्य प्रदेशमय, झलकें उसमें नित्य॥ ५३॥  
 स्व स्वभाव गुण धर्ममय, शक्ति अनन्तानन्त।  
 इनको जाने जीव जो, पावे भव का अन्त॥ ५४॥  
 तीन काल के समय सम इक गुण की पर्याय।  
 जो-जो हों जिस-जिस समय, जानें सब जिनराय॥ ५५॥  
 जो होनी है जिस समय, उसी समय वह होय।  
 कितनी भी कोशिश करो, टस-से-मस ना होय॥ ५६॥  
 जिसका है श्रद्धान यह, उसके भव का अन्त।  
 ऐसी श्रद्धावान के, भव ना होय अनन्त॥ ५७॥  
 सौ इन्द्रों के सामने, भाषी श्री भगवन्त।  
 इसमें संशय रंच ना, मान करो भव अन्त॥ ५८॥  
 यदि चाहो इस भव विषै, सन्तों जैसी शान्ति।  
 स्वीकारो इस सत्य को, रखो ना मन में भ्रांति॥ ५९॥

परम सत्य की स्वीकृति, परम सत्य का ज्ञान।  
 परम सत्य की साधना, परमानन्द महान॥ ६०॥  
 जो-जो केवलज्ञान में, झलक रहा है नित्य।  
 उसे जानकर मानकर, दिखलाओ भव्यत्व॥ ६१॥  
 पर्यय किसकी कब कहाँ, जानें केवलज्ञान।  
 फेर-फार संभव नहीं, भाषी श्री भगवान॥ ६२॥  
 भूतकालवत् जानिये, आगामी पर्याय।  
 भी स्वकाल में होत है, फेर-फार ना थाय॥ ६३॥  
 अदल-बदल कुछ भी नहीं, ना जल्दी ना देर।  
 कुछ भी संभव है नहीं, हेर-फेर-अन्धेर॥ ६४॥  
 जिस गुण में जिस द्रव्य में, जब-जब जो-जो होय।  
 रे अनादि से अन्त तक, सभी सुनिश्चित होय॥ ६५॥  
 कोई क्यों बदले अरे, सहज द्रव्य की चाल।  
 सहज भाव से परिणमन, क्यों न हो स्वीकार॥ ६६॥  
 द्रव्यों के परिणमन में, हस्तक्षेप का भाव।  
 अनुचित है अन्याय है, है विभावमय भाव॥ ६७॥  
 कोई किसी का क्यों करें, क्यों हो ऐसा भाव।  
 ऐसा हो सकता नहीं, रे-रे वस्तु स्वभाव॥ ६८॥  
 फेरफार की कल्पना, है आकुलता रूप।  
 सब जग जाने बात यह, आकुलता दुखरूप॥ ६९॥

जबतक यह बेहोश<sup>१</sup> था, तबतक किया न रंच।  
 अब जब आया होश<sup>२</sup> में, तब क्यों करे प्रपंच॥ ७०॥  
 जब से आया होश में, तब से उठें विकल्प।  
 करूँ बदल दूँ वस्तु को, विकल्प उठें अनल्प॥ ७१॥  
 वस्तु विकल्पातीत है, और विकल्प अनल्प।  
 इसीलिये ना हो रहा, यह आत्म अविकल्प॥ ७२॥  
 फेर-फार संभव नहीं, पर फेर-फार के भाव।  
 अरे निरन्तर हो रहे, जिनका आर-न-पार॥ ७३॥  
 सब विकल्प हैं निरर्थक, रे उनके अनुसार।  
 वस्तु कभी ना परिणमं, हैं वे सब बेकार॥ ७४॥  
 पर कर्मों का बंध तो, हो उनके अनुसार।  
 अतः कहे हैं अनर्थक, अपने लिये हजार॥ ७५॥  
 जिसका जैसा परिणमन, होनहार अनुसार।  
 वह वैसा ही होयगा, भव्य करो स्वीकार॥ ७६॥  
 सहज स्वीकृति धर्म है, सहज ज्ञान सद्ज्ञान।  
 सहज आचरण चरण है, होवे केवलज्ञान॥ ७७॥  
 जो कुछ जैसा हो रहा, करो सहज स्वीकार।  
 यही सहजता धर्म है, सहजानन्द अपार॥ ७८॥  
 सब कुछ नक्की सहज ही, नहीं कोई करतार।  
 यही अकर्त्ताभाव है, शिवमग का आधार॥ ७९॥

१. निगोद से लेकर असैनी पंचेन्द्रिय तक

२. सैनी पंचेन्द्रिय हुआ



दर्शन-ज्ञान-चरित्र सब, शिवमग के आधार।  
 सहज भाव से प्रगट हो, सहजानन्द अपार॥ ८०॥

सहज ज्ञान दर्शन सहज, सहज चरण ही सार।  
 सहजध्यान सहजात्म का, सहजानन्द अपार॥ ८१॥

सहज सहजता सहज ही, दर्शन-ज्ञान अनन्त।  
 सहज परिणामन सहज में, होवे भव का अन्त॥ ८२॥

सहज परिणामन धर्म है, सहज परिणामन सार।  
 सहज स्वभावी वस्तु ही, जीवन का आधार॥ ८३॥

सभी वस्तुयें सहज हैं, सब में शक्ति अनन्त।  
 सभी निरन्तर परिणामें, सभी अनादि-अनन्त॥ ८४॥

सहज परिणामन की धनी, सभी वस्तुयें नित्य।  
 अर अनित्य भी हैं सभी, सब है नित्यानित्य॥ ८५॥

निज स्वभाव छोड़े नहीं, अतः सभी हैं नित्य।  
 और निरन्तर परिणामें, कहते उन्हें अनित्य॥ ८६॥

बदलें पर बदलें नहीं, बदलाबदली रूप।  
 दोनों वस्तु स्वभाव हैं, वस्तुस्वरूप अनूप॥ ८७॥

नहीं बदलना द्रव्य का, है यह नित्य स्वभाव।  
 अरे निरन्तर बदलना, है पर्याय स्वभाव॥ ८८॥

द्रव्य और पर्याय हैं, दोनों वस्तुस्वभाव।  
 वस्तु दोनों रूप है, दोनों का सद्भाव॥ ८९॥

नहीं बदलना वस्तु का, जैसा द्रव्य स्वभाव।  
 नित्य बदलना वस्तु का, है पर्याय स्वभाव॥ ९०॥

एक समय इक साथ ही, बदलाबदली होय।  
 ज्ञानीजन अनुभव करें, इसमें शक न कोय॥ ९१॥

मूल बात यह जान लो, अदल-बदल जो होय।  
 पहले से ही वह सभी, पूर्ण सुनिश्चित होय॥ ९२॥

जब जैसा जिस वस्तु का, जो-जो होना होय।  
 इसमें संशय है नहीं, तब तैसा वह होय॥ ९३॥

दृढ़ श्रद्धा अर ज्ञान हो, अर चरण उसी अनुसार।  
 होता है यह जानिये, जिनशासन अनुसार॥ ९४॥

श्रमणजनों का समझिये, यह उत्कृष्ट स्वरूप।  
 अणुव्रतियों में भी रहे, इसका मध्यम रूप॥ ९५॥

अविरत सम्यग्दृष्टि भी, मुक्तिमग के पूत।  
 उनमें भी रहता अरे, इसका अल्प स्वरूप॥ ९६॥

श्रमण अणुव्रती अव्रती सम्यग्दृष्टि जीव।  
 सब शिवपंथी भव्यजन रहते रहें सदीव॥ ९७॥

श्रमणजनों की भक्तिवश, अद्भुत श्रमणस्वरूप।  
 प्रस्तुत मैंने किया है, श्रमणों का यह रूप॥ ९८॥

श्रमणजनों को समर्पित सम्यक् श्रमण स्वरूप।  
 पठन-मनन-चिन्तन करो, यह श्रमणों का रूप॥ ९९॥

इसके ही अनुसार हो, श्रमण-श्रावकाचार।  
 महाश्रमण महावीर का, कहना बारम्बार॥ १००॥

दशवी फाल्गुन सुदी की, सोल मार्च उन्नीस।  
 श्रमण शतक पूरा हुआ, नमो नमो आदीश॥ १०१॥

## षष्ठम् शतक : कुन्दकुन्दशतक

सुर-असुर-इन्द्र-नरेन्द्र-वंदित कर्ममल निर्मलकरन ।  
 वृषतीर्थ के करतार श्री वर्द्धमान जिन शत-शत नमन ॥ १॥  
 अरहंत सिद्धाचार्य पाठक साधु हैं परमेष्ठि पण ।  
 सब आतमा की अवस्थाएँ आतमा ही है शरण ॥ २॥  
 सम्यक् सुदर्शन ज्ञान तप समभाव सम्यक् आचरण ।  
 सब आतमा की अवस्थाएँ आतमा ही है शरण ॥ ३॥  
 निर्ग्रन्थ है नीराग है निःशल्य है निर्दोष है ।  
 निर्मान-मद यह आतमा निष्काम है निष्क्रोध है ॥ ४॥  
 निर्दण्ड है निर्द्वन्द्व है यह निरालम्बी आतमा ।  
 निर्देह है निर्मूढ है निर्भयी निर्मम आतमा ॥ ५॥  
 मैं एक दर्शन ज्ञान मय नित शुद्ध हूँ रूपी नहीं ।  
 ये अन्य सब परद्रव्य किंचित् मात्र भी मेरे नहीं ॥ ६॥  
 चैतन्य गुणमय आतमा अव्यक्त अरस अरूप है ।  
 जानो अलिंगग्रहण इसे यह अनिर्दिष्ट अशब्द है ॥ ७॥  
 जिस भाँति प्रज्ञाछैनी से पर से विभक्त किया इसे ।  
 उस भाँति प्रज्ञाछैनी से ही अरे ग्रहण करो इसे ॥ ८॥  
 जो जानता मैं शुद्ध हूँ वह शुद्धता को प्राप्त हो ।  
 जो जानता अविशुद्ध वह अविशुद्धता को प्राप्त हो ॥ ९॥  
 यह आत्म ज्ञानप्रमाण है अर ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है ।  
 हैं ज्ञेय लोकालोक इस विधि सर्वगत यह ज्ञान है ॥ १०॥

चारित्र दर्शन ज्ञान को सब साधुजन सेवें सदा ।  
 ये तीन ही हैं आतमा बस कहे निश्चयनय सदा ॥ ११॥  
 'यह नृपति है' यह जानकर अर्थार्थिजन श्रद्धा करें ।  
 अनुचरण उसका ही करें अति प्रीति से सेवा करें ॥ १२॥  
 यदि मोक्ष की है कामना तो जीवनृप को जानिये ।  
 अति प्रीति से अनुचरण करिये प्रीति से पहिचानिये ॥ १३॥  
 जो भव्यजन संसार-सागर पार होना चाहते ।  
 वे कर्मईधन-दहन निज शुद्धातमा को ध्यावते ॥ १४॥  
 मोक्षपथ में थाप निज को चेतकर निज ध्यान धर ।  
 निज में ही नित्य विहार कर पर द्रव्य में न विहार कर ॥ १५॥  
 जीवादि का श्रद्धान सम्यक् ज्ञान सम्यग्ज्ञान है ।  
 रागादि का परिहार चारित यही मुक्तीमार्ग है ॥ १६॥  
 तत्त्वरुचि सम्यक्त्व है तत्ग्रहण सम्यग्ज्ञान है ।  
 जिनदेव ने ऐसा कहा परिहार ही चारित्र है ॥ १७॥  
 जानना ही ज्ञान है अरु देखना दर्शन कहा ।  
 पुण्य-पाप का परिहार चारित्र यही जिनवर ने कहा ॥ १८॥  
 दर्शन रहित यदि वेष हो चारित्र विरहित ज्ञान हो ।  
 संयम रहित तप निरर्थक आकाश-कुसुम समान हो ॥ १९॥  
 दर्शन सहित हो वेष चारित्र शुद्ध सम्यग्ज्ञान हो ।  
 संयम सहित तप अल्प भी हो तदपि सुफल महान हो ॥ २०॥

परमार्थ से हों दूर पर तप करें व्रत धारण करें ।  
 सब बालतप है बालव्रत वृषभादि सब जिनवर कहें ॥ २१ ॥  
 व्रत नियम सब धारण करें तप शील भी पालन करें ।  
 पर दूर हों परमार्थ से ना मुक्ति की प्राप्ति करें ॥ २२ ॥  
 जो शक्य हो वह करें और अशक्य की श्रद्धा करें ।  
 श्रद्धान ही सम्यक्त्व है इस भाँति सब जिनवर कहें ॥ २३ ॥  
 जीवादि का श्रद्धान ही व्यवहार से सम्यक्त्व है ।  
 पर नियत नय से आत्म का श्रद्धान ही सम्यक्त्व है ॥ २४ ॥  
 नियम से निज द्रव्य में रत श्रमण सम्यक्वंत हैं ।  
 सम्यक्त्व-परिणत श्रमण ही क्षय करें करमानन्त हैं ॥ २५ ॥  
 मुक्ती गये या जायेंगे माहात्म्य है सम्यक्त्व का ।  
 यह जान लो हे भव्यजन ! इससे अधिक अब कहें क्या ॥ २६ ॥  
 वे धन्य हैं सुकृतार्थ हैं, वे शूर नर पण्डित वही ।  
 दुःस्वप्न में सम्यक्त्व को जिनने मलीन किया नहीं ॥ २७ ॥  
 चिदचिदास्रव पाप-पुण्य शिव बंध संवर निर्जरा ।  
 तत्त्वार्थ ये भूतार्थ से जाने हुए सम्यक्त्व हैं ॥ २८ ॥  
 शुद्धनय भूतार्थ है अभूतार्थ है व्यवहारनय ।  
 भूतार्थ की ही शरण गह यह आतमा सम्यक् लहे ॥ २९ ॥  
 अनार्य भाषा के बिना समझा सके न अनार्य को ।  
 बस त्योंहि समझा सके ना व्यवहार बिन परमार्थ को ॥ ३० ॥

देह-चेतन एक हैं ह्य यह वचन है व्यवहार का ।  
 ये एक हो सकते नहीं ह्य यह कथन है परमार्थ का ॥ ३१ ॥  
 दृग ज्ञान चारित जीव के हैं ह्य यह कहा व्यवहार से ।  
 ना ज्ञान दर्शन चरण ज्ञायक शुद्ध है परमार्थ से ॥ ३२ ॥  
 जो सो रहा व्यवहार में वह जागता निज कार्य में ।  
 जो जागता व्यवहार में वह सो रहा निज कार्य में ॥ ३३ ॥  
 इस ही तरह परमार्थ से कर नास्ति इस व्यवहार की ।  
 निश्चयनयाश्रित श्रमणजन प्राप्ति करें निर्वाण की ॥ ३४ ॥  
 सद्धर्म का है मूल दर्शन जिनवरेन्द्रों ने कहा ।  
 हे कानवालो सुनो दर्शन-हीन वंदन योग्य ना ॥ ३५ ॥  
 जो ज्ञान-दर्शन-भ्रष्ट हैं चारित्र से भी भ्रष्ट हैं ।  
 वे भ्रष्ट करते अन्य को वे भ्रष्ट से भी भ्रष्ट हैं ॥ ३६ ॥  
 दृग-भ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं उनको कभी निर्वाण ना ।  
 हों सिद्ध चारित्र-भ्रष्ट पर दृग-भ्रष्ट को निर्वाण ना ॥ ३७ ॥  
 जो लाज गारव और भयवश पूजते दृग-भ्रष्ट को ।  
 की पाप की अनुमोदना ना बोधि उनको प्राप्त हो ॥ ३८ ॥  
 चाहें नमन दृगवंत से पर स्वयं दर्शनहीन हों ।  
 है बोधिदुर्लभ उन्हें भी वे भी वचन-पग हीन हों ॥ ३९ ॥  
 यद्यपि करें वे उग्र तप शत-सहस-कोटी वर्ष तक ।  
 पर रतनत्रय पावें नहीं सम्यक्त्व-विरहित साधु सब ॥ ४० ॥

जिसतरह द्रुम परिवार की वृद्धि न हो जड़ के बिना ।  
 बस उसतरह ना मुक्ति हो जिनमार्ग में दर्शन बिना ॥ ४१ ॥  
 असंयमी न वन्द्य है दृगहीन वस्त्रविहीन भी ।  
 दोनों ही एक समान हैं दोनों ही संयत हैं नहीं ॥ ४२ ॥  
 ना वंदना हो देह की कुल की नहीं ना जाति की ।  
 कोई करे क्यों वंदना गुण-हीन श्रावक-साधु की ॥ ४३ ॥  
 मैं कर्म हूँ नोकर्म हूँ या हैं हमारे ये सभी ।  
 यह मान्यता जब तक रहे अज्ञानि हैं तब तक सभी ॥ ४४ ॥  
 करम के परिणाम को नोकरम के परिणाम को ।  
 जो ना करे बस मात्र जाने प्राप्त हो सद्ज्ञान को ॥ ४५ ॥  
 मैं मारता हूँ अन्य को या मुझे मारें अन्यजन ।  
 यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन! ॥ ४६ ॥  
 निज आयुक्षय से मरण हो हूँ यह बात जिनवर ने कही ।  
 तुम मार कैसे सकोगे जब आयु हर सकते नहीं? ॥ ४७ ॥  
 निज आयुक्षय से मरण हो हूँ यह बात जिनवर ने कही ।  
 वे मरण कैसे करें तब जब आयु हर सकते नहीं? ॥ ४८ ॥  
 मैं हूँ बचाता अन्य को मुझको बचावे अन्यजन ।  
 यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन! ॥ ४९ ॥  
 सब आयु से जीवित रहें हूँ यह बात जिनवर ने कही ।  
 जीवित रखोगे किस तरह जब आयु दे सकते नहीं? ॥ ५० ॥

सब आयु से जीवित रहें हूँ यह बात जिनवर ने कही ।  
 कैसे बचावे वे तुझे जब आयु दे सकते नहीं? ॥ ५१ ॥  
 मैं सुखी करता दुःखी करता हूँ जगत में अन्य को ।  
 यह मान्यता अज्ञान है क्यों ज्ञानियों को मान्य हो? ॥ ५२ ॥  
 मारो न मारो जीव को हो बंध अध्यवसान से ।  
 यह बंध का संक्षेप है तुम जान लो परमार्थ से ॥ ५३ ॥  
 प्राणी मरें या न मरें हिंसा अयत्नाचार से ।  
 तब बंध होता है नहीं जब रहें यत्नाचार से ॥ ५४ ॥  
 उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त सत् सत् द्रव्य का लक्षण कहा ।  
 पर्याय-गुणमय द्रव्य है हूँ यह वचन जिनवर ने कहा ॥ ५५ ॥  
 पर्याय बिन ना द्रव्य हो ना द्रव्य बिन पर्याय ही ।  
 दोनों अनन्य रहे सदा हूँ यह बात श्रमणों ने कही ॥ ५६ ॥  
 द्रव्य बिन गुण हों नहीं गुण बिना द्रव्य नहीं बने ।  
 गुण द्रव्य अव्यतिरिक्त हैं हूँ यह कहा जिनवर देव ने ॥ ५७ ॥  
 उत्पाद हो न अभाव का ना नाश हो सद्भाव में ।  
 उत्पाद-व्यय करते रहें सब द्रव्य गुण-पर्याय में ॥ ५८ ॥  
 असद्भूत हों सद्भूत हों सब द्रव्य की पर्याय सब ।  
 सद्ज्ञान में वर्तमानवत ही हैं सदा वर्तमान सब ॥ ५९ ॥  
 पर्याय जो अनुत्पन्न हैं या नष्ट जो हो गई हैं ।  
 असद्भावी वे सभी पर्याय ज्ञान प्रत्यक्ष हैं ॥ ६० ॥

पर्याय जो अनुत्पन्न हैं या हो गई हैं नष्ट जो ।  
 फिर ज्ञान की क्या दिव्यता यदि ज्ञात होवें नहीं वो? ॥ ६१॥  
 अरहंत-भासित ग्रथित-गणधर सूत्र से ही श्रमणजन ।  
 परमार्थ का साधन करें अध्ययन करो हे भव्यजन ॥ ६२॥  
 डोरा सहित सुड़ नहीं खोती गिरे चाहे वन भवन ।  
 संसार-सागर पार हों जिनसूत्र के ज्ञायक श्रमण ॥ ६३॥  
 तत्त्वार्थ को जो जानते प्रत्यक्ष या जिनशास्त्र से ।  
 दृगमोह क्षय हो इसलिए स्वाध्याय करना चाहिए ॥ ६४॥  
 जिन-आगमों से सिद्ध हों सब अर्थ गुण-पर्यय सहित ।  
 जिन-आगमों से ही श्रमणजन जानकर साधें स्वहित ॥ ६५॥  
 स्वाध्याय से जो जानकर निज अर्थ में एकाग्र हैं ।  
 भूतार्थ से वे ही श्रमण स्वाध्याय ही बस श्रेष्ठ है ॥ ६६॥  
 जो श्रमण आगमहीन हैं वे स्व-पर को नहीं जानते ।  
 वे कर्मक्षय कैसे करें जो स्व-पर को नहीं जानते ॥ ६७॥  
 व्रत सहित पूजा आदि सब जिन धर्म में सत्कर्म हैं ।  
 दृगमोह हूँ क्षोभ विहीन निज परिणाम आत्मधर्म हैं ॥ ६८॥  
 चारित्र ही बस धर्म है वह धर्म समताभाव है ।  
 दृगमोह-क्षोभ विहीन निज परिणाम समताभाव है ॥ ६९॥  
 प्राप्त करते मोक्षसुख शुद्धोपयोगी आतमा ।  
 पर प्राप्त करते स्वर्गसुख हि शुभोपयोगी आतमा ॥ ७०॥

शुभोपयोगी श्रमण हैं शुद्धोपयोगी भी श्रमण ।  
 शुद्धोपयोगी निरास्रव हैं आस्रवी हैं शेष सब ॥ ७१॥  
 कांच-कंचन बन्धु-अरि सुख-दुःख प्रशंसा-निन्द में ।  
 शुद्धोपयोगी श्रमण का समभाव जीवन-मरण में ॥ ७२॥  
 भावलिंगी सुखी होते द्रव्यलिंगी दुःख लहें ।  
 गुण-दोष को पहिचान कर सब भाव से मुनि पद गहें ॥ ७३॥  
 मिथ्यात्व का परित्याग कर हो नग्न पहले भाव से ।  
 आज्ञा यही जिनदेव की फिर नग्न होवे द्रव्य से ॥ ७४॥  
 जिन भावना से रहित मुनि भव में भ्रमं चिरकाल तक ।  
 हों नग्न पर हों बोधि-विरहित दुःख लहें चिरकाल तक ॥ ७५॥  
 वस्त्रादि सब परित्याग कोड़ाकोड़ि वर्षों तप करें ।  
 पर भाव बिन ना सिद्धि हो सत्यार्थ यह जिनवर कहें ॥ ७६॥  
 नारकी तिर्यच आदिक देह से सब नग्न हैं ।  
 सच्चे श्रमण तो हैं वही जो भाव से भी नग्न हैं ॥ ७७॥  
 जन्मते शिशुवत अकिंचन नहीं तिलतुष हाथ में ।  
 किंचित् परिग्रह साथ हो तो श्रमण जाँय निगोद में ॥ ७८॥  
 जो आर्त होते जोड़ते रखते रखाते यत्न से ।  
 वे पाप मोहितमती हैं वे श्रमण नहीं तिर्यच हैं ॥ ७९॥  
 राग करते नारियों से दूसरों को दोष दें ।  
 सद्ज्ञान-दर्शन रहित हैं वे श्रमण नहीं तिर्यच हैं ॥ ८०॥

श्रावकों में शिष्यगण में नेह रखते श्रमण जो ।  
 हीन विनयाचार से वे श्रमण नहीं तिर्यच हैं ॥ ८१ ॥  
 पार्श्वस्थ से भी हीन जो विश्वस्त महिला वर्ग में ।  
 रत ज्ञान दर्शन चरण दें वे नहीं पथ अपवर्ग में ॥ ८२ ॥  
 धर्म से हो लिंग केवल लिंग से न धर्म हो ।  
 समभाव को पहिचानिये द्रवलिङ्ग से क्या कार्य हो ॥ ८३ ॥  
 विरक्त शिवरमणी वरें अनुरक्त बाँधे कर्म को ।  
 जिनदेव का उपदेश यह मत कर्म में अनुरक्त हो ॥ ८४ ॥  
 परमार्थ से हैं बाह्य वे जो मोक्षमग नहीं जानते ।  
 अज्ञान से भवगमन-कारण पुण्य को हैं चाहते ॥ ८५ ॥  
 सुशील है शुभकर्म और अशुभ करम कुशील है ।  
 संसार के हैं हेतु वे कैसे कहें कि सुशील हैं? ॥ ८६ ॥  
 ज्यों लोह बेड़ी बाँधती त्यों स्वर्ण की भी बाँधती ।  
 इस भाँति ही शुभ-अशुभ दोनों कर्म बेड़ी बाँधती ॥ ८७ ॥  
 दुःशील के संसर्ग से स्वाधीनता का नाश हो ।  
 दुःशील से संसर्ग एवं राग को तुम मत करो ॥ ८८ ॥  
 पुण्य-पाप में अन्तर नहीं है हू जो न मानें बात ये ।  
 संसार-सागर में भ्रमे मद-मोह से आच्छन्न वे ॥ ८९ ॥  
 इन्द्रियसुख सुख नहीं दुख है विषम बाधा सहित है ।  
 है बंध का कारण दुखद परतंत्र है विच्छिन्न है ॥ ९० ॥

शुभ-अशुभ रचना वचन वा रागादिभाव निवारिके ।  
 जो करें आतम ध्यान नर उनके नियम से नियम है ॥ ९१ ॥  
 सद्-ज्ञान-दर्शन-चरित ही है 'नियम' जानो नियम से ।  
 विपरीत का परिहार होता 'सार' इस शुभ वचन से ॥ ९२ ॥  
 जैन शासन में कहा है मार्ग एवं मार्गफल ।  
 है मार्ग मोक्ष-उपाय एवं मोक्ष ही है मार्गफल ॥ ९३ ॥  
 है जीव नाना कर्म नाना लब्धि नानाविध कही ।  
 अतएव वर्जित वाद है निज-पर समय के साथ भी ॥ ९४ ॥  
 ज्यों निधि पाकर निज वतन में गुप्त रह जन भोगते ।  
 त्यों ज्ञानिजन भी ज्ञाननिधि परसंग तज के भोगते ॥ ९५ ॥  
 यदि कोई ईर्ष्याभाव से निन्दा करे जिनमार्ग की ।  
 छोड़ो न भक्ती वचन सुन इस वीतरागी मार्ग की ॥ ९६ ॥  
 जो थाप निज को मुक्तिपथ भक्ती निवृत्ती की करें ।  
 वे जीव निज असहाय गुण सम्पन्न आतम को वरें ॥ ९७ ॥  
 मुक्तिगत नरश्रेष्ठ की भक्ती करें गुणभेद से ।  
 वह परमभक्ती कही है जिनसूत्र में व्यवहार से ॥ ९८ ॥  
 द्रव्य गुण पर्याय से जो जानते अरहंत को ।  
 वे जानते निज आतमा दृगमोह उनका नाश हो ॥ ९९ ॥  
 सर्व ही अरहंत ने विधि नष्ट कीने जिस विधी ।  
 सबको बताई वही विधि हो नमन उनको सब विधी ॥ १०० ॥  
 है ज्ञान दर्शन शुद्धता निज शुद्धता श्रामण्य है ।  
 हो शुद्ध को निर्वाण शत-शत बार उनको नमन है ॥ १०१ ॥

## सप्तम शतक : शुद्धात्मशतक

परद्रव्य को परित्याग पाया ज्ञानमय निज आतमा ।  
 शतवार उनको हो नमन निष्कर्म जो परमात्मा ॥ १ ॥

परद्रव्य में रत बंधे और विरक्त शिवरमणी वरें ।  
 जिनदेव का उपदेश बंध-अबंध का संक्षेप में ॥ २ ॥

परद्रव्य से हो दुर्गती निजद्रव्य से होती सुगति ।  
 यह जानकर रति करो निज में अर करो पर से विरति ॥ ३ ॥

नित नियम से निजद्रव्य में रत श्रमण सम्यक्वन्त हैं ।  
 सम्यक्त्व परिणत श्रमण ही क्षय करे करमानंत हैं ॥ ४ ॥

किन्तु जो परद्रव्यरत वे श्रमण मिथ्यादृष्टि हैं ।  
 मिथ्यात्व परिणत वे श्रमण दुष्टाष्ट कर्मों से बंधे ॥ ५ ॥

जो आतमा से भिन्न चित्ताचित्त एवं मिश्र हैं ।  
 उन सर्वद्रव्यों को अरे परद्रव्य जिनवर ने कहा ॥ ६ ॥

दुष्टाष्ट कर्मों से रहित जो ज्ञानविग्रह शुद्ध है ।  
 वह नित्य अनुपम आतमा स्वद्रव्य जिनवर ने कहा ॥ ७ ॥

निजद्रव्य रत यह आतमा ही योगि चारित्रवन्त है ।  
 यह ही बने परमात्मा परमार्थनय का कथन यह ॥ ८ ॥

परद्रव्य की पर्याय में उपजे ग्रहे ना परिणमे ।  
 बहुभाँति पुद्गल कर्म को ज्ञानी पुरुष जाना करें ॥ ९ ॥

परद्रव्य की पर्याय में उपजे ग्रहे ना परिणमें ।  
 पुद्गलकरम का नंतफल ज्ञानी पुरुष जाना करें ॥ १० ॥

परद्रव्य की पर्याय में उपजे ग्रहे ना परिणमें ।  
 बहुभाँति निज परिणाम सब ज्ञानी पुरुष जाना करें ॥ ११ ॥

निज आतमा को शुद्ध अर पररूप पर को जानता ।  
 है कौन बुध जो जगत में परद्रव्य को अपना कहे ॥ १२ ॥

बस आतमा ही आतमा का परीग्रह - यह जानकर ।  
 'परद्रव्य मेरा है' - बताओ कौन बुध ऐसा कहे? ॥ १३ ॥

यदि परीग्रह मेरा बने तो मैं अजीव बनूँ अरे ।  
 पर मैं तो ज्ञायकभाव हूँ इसलिए पर मेरे नहीं ॥ १४ ॥

छिद जाय या ले जाय कोइ अथवा प्रलय को प्राप्त हो ।  
 जावे चला चाहे जहाँ पर परीग्रह मेरा नहीं ॥ १५ ॥

है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे धर्म को ।  
 है परीग्रह ना धर्म का वह धर्म का ज्ञायक रहे ॥ १६ ॥

है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे अधर्म को ।  
 है परिग्रह न अधर्म का वह अधर्म का ज्ञायक रहे ॥ १७ ॥

है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे असन को ।  
 है परिग्रह न असन का वह असन का ज्ञायक रहे ॥ १८ ॥

है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे पेय को ।  
 है परिग्रह न पेय का वह पेय का ज्ञायक रहे ॥ १९ ॥

इत्यादि विध-विध भाव जो ज्ञानी न चाहे सभी को ।  
 सर्वत्र ही वह निरालम्बी नियत ज्ञायकभाव है ॥ २० ॥

उदयकर्मों के विविध-विध सूत्र में जिनवर कहे।  
 किन्तु वे मेरे नहीं मैं एक ज्ञायकभाव हूँ ॥ २१॥  
 पुद्गल करम है राग उसके उदय ये परिणाम हैं।  
 किन्तु ये मेरे नहीं मैं एक ज्ञायकभाव हूँ ॥ २२॥  
 अज्ञानमोहितमती बहुविध भाव से संयुक्त जिय।  
 अबद्ध एवं बद्ध पुद्गल द्रव्य को अपना कहें ॥ २३॥  
 सर्वज्ञ ने देखा सदा उपयोग लक्षण जीव यह।  
 पुद्गलमयी हो किसतरह किसतरह तू अपना कहे? ॥ २४॥  
 जीवमय पुद्गल तथा पुद्गलमयी हो जीव जब।  
 ये मेरे पुद्गल द्रव्य हैं - यह कहा जा सकता है तब ॥ २५॥  
 दूध-पानी की तरह सम्बन्ध इनका जानना।  
 उपयोगमय इस जीव के परमार्थ से ये हैं नहीं ॥ २६॥  
 पथिक लुटते देखकर पथ लुट रहा जगजन कहें।  
 पर पथ तो लुटता है नहीं बस पथिक ही लुटते रहें ॥ २७॥  
 उस ही तरह रंग देखकर जड़कर्म अर नोकर्म का।  
 जिनवर कहें व्यवहार से यह वर्ण है इस जीव का ॥ २८॥  
 इस तरह ही रस गंध तन संस्थान आदिक जीव के।  
 व्यवहार से हैं - कहें वे जो जानते परमार्थ को ॥ २९॥  
 वर्णादिमय ही जीव है तुम यदी मानो इसतरह।  
 तब जीव और अजीव में अन्तर करोग किसतरह? ॥ ३०॥

शुध जीव के रस गंध ना अर वर्ण ना स्पर्श ना।  
 यह देह ना जड़रूप ना संस्थान ना संहनन ना ॥ ३१॥  
 ना राग है ना द्वेष है ना मोह है इस जीव के।  
 प्रत्यय नहीं है कर्म ना नोकर्म ना इस जीव के ॥ ३२॥  
 ना वर्ण है ना वर्गणा अर कोई स्पर्धक नहीं।  
 अर नहीं है अनुभाग के अध्यात्म के स्थान भी ॥ ३३॥  
 योग के स्थान नहीं अर बंध के स्थान ना।  
 उदय के स्थान नहीं अर मार्गणा स्थान ना ॥ ३४॥  
 थितिबंध के स्थान नहीं संक्लेश के स्थान ना।  
 संयमलब्धि के स्थान ना सुविशुद्धि के स्थान ना ॥ ३५॥  
 जीव के स्थान नहीं गुणथान के स्थान ना।  
 क्योंकि ये सब भाव पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं ॥ ३६॥  
 हैं हेय ये परभाव सब ही क्योंकि ये परद्रव्य हैं।  
 आदेय अन्तस्तत्त्व आतम क्योंकि वह स्वद्रव्य है ॥ ३७॥  
 चैतन्य गुणमय आतमा अव्यक्त अरस अरूप है।  
 जानो अलिंगग्रहण इसे यह अनिर्दिष्ट अशब्द है ॥ ३८॥  
 मैं एक दर्शन-ज्ञानमय नित शुद्ध हूँ रूपी नहीं।  
 ये अन्य सब परद्रव्य किंचित् मात्र भी मेरे नहीं ॥ ३९॥  
 मोहादि मेरे कुछ नहीं मैं एक हूँ उपयोगमय।  
 है मोह-निर्ममता यही वे कहें जो जाने समय ॥ ४०॥



धर्मादि मेरे कुछ नहीं मैं एक हूँ उपयोगमय ।  
 है धर्म-निर्ममता यही वे कहे जो जाने समय ॥ ४१॥

ज्ञायकस्वाभावी आत्मा इसतरह ज्ञानी जानते ।  
 निजतत्त्व को पहिचान कर कर्मोदर्यों को छोड़ते ॥ ४२॥

सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी आत्मा सिध शुद्ध है ।  
 यह कहा जिनवर देव ने तुम स्वयं केवल ज्ञानमय ॥ ४३॥

शास्त्र ज्ञान नहीं है क्योंकि शास्त्र कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही शास्त्र अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ॥ ४४॥

शब्द ज्ञान नहीं है क्योंकि शब्द कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही शब्द अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ॥ ४५॥

रूप ज्ञान नहीं है क्योंकि रूप कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही रूप अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ॥ ४६॥

वर्ण ज्ञान नहीं है क्योंकि वर्ण कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही वर्ण अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ॥ ४७॥

गंध ज्ञान नहीं है क्योंकि गंध कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही गंध अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ॥ ४८॥

रस ज्ञान नहीं है, क्योंकि कुछ भी रस जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही अन्य रस अरु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ॥ ४९॥

स्पर्श ज्ञान नहीं है क्योंकि स्पर्श कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए स्पर्श अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ॥ ५०॥

कर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही कर्म अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ॥ ५१॥

धर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि धर्म कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही धर्म अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ॥ ५२॥

अधर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि अधर्म कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही अधर्म अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ॥ ५३॥

काल ज्ञान नहीं है क्योंकि काल कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए ही काल अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ॥ ५४॥

आकाश ज्ञान नहीं है क्योंकि आकाश कुछ जाने नहीं ।  
 बस इसलिए आकाश अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ॥ ५५॥

अध्यवसान ज्ञान नहीं है क्योंकि वे अचेतन जिन कहे ।  
 इसलिए अध्यवसान अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ॥ ५६॥

नित्य जाने जीव बस इसलिए ज्ञायकभाव है ।  
 है ज्ञान अव्यतिरिक्त ज्ञायकभाव से यह जानना ॥ ५७॥

ज्ञान ही समदृष्टि संयम सूत्र पूर्वगतांग भी ।  
 सद्धर्म और अधर्म दीक्षा ज्ञान हैं - यह बुध कहे ॥ ५८॥

इस ज्ञानगुण के बिना जन प्राप्ती न शिवपद की करें ।  
 यदि चाहते हो मुक्त होना ज्ञान का आश्रय करो ॥ ५९॥

इस ज्ञान में ही रत रहो सन्तुष्ट नित इसमें रहो ।  
 बस तृप्त भी इसमें रहो तो परमसुख को प्राप्त हो ॥ ६०॥

परमार्थ है है ज्ञानमय है समय शुध मुनि केवली ।  
 इसमें रहें थिर अचल जो निर्वाण पावें वे मुनि ॥६१॥  
 निज आतमा ही ज्ञान है दर्शन चरित भी आतमा ।  
 अर योग संवर और प्रत्याख्यान भी है आतमा ॥ ६२॥  
 निर्ग्रथ है नीराग है निःशल्य है निर्दोष है ।  
 निर्मान-मद यह आतमा निष्काम है निष्क्रोध है ॥ ६३॥  
 निर्दण्ड है निर्द्वन्द्व है यह निरालम्बी आतमा ।  
 निर्देह है निर्मूढ है निर्भयी निर्मम आतमा ॥ ६४॥  
 ज्ञानी विचारें इसतरह यह चिन्तवन उनका सदा ।  
 केवल्यदर्शन-ज्ञान-सुख-शक्तिस्वभावी हूँ सदा ॥ ६५॥  
 ज्ञानी विचारे देखे-जाने जो सभी को मैं वही ।  
 जो ना ग्रहे परभाव को निजभाव को छोड़े नहीं ॥ ६६॥  
 गुण आठ से हैं अलंकृत अर जन्म मरण जरा नहीं ।  
 हैं सिद्ध जैसे जीव त्यों भवलीन संसारी वही ॥ ६७॥  
 शुद्ध अविनाशी अतीन्द्रिय अदेह निर्मल सिद्ध ज्यों ।  
 लोकाग्र में जैसे विराजे जीव हैं भवलीन त्यों ॥ ६८॥  
 कर्म से आबद्ध जिय यह कथन है व्यवहार का ।  
 पर कर्म से ना बद्ध जिय यह कथन है परमार्थ का ॥ ६९॥  
 अबद्ध है या बद्ध है जिय यह सभी नयपक्ष हैं ।  
 नयपक्ष से अतिक्रान्त जो वह ही समय का सार है ॥ ७०॥

जिस भाँति प्रज्ञा छैनि से पर से विभक्त किया इसे ।  
 उस भाँति प्रज्ञा छैनि से ही अरे ग्रहण करो इसे ॥ ७१॥  
 इस भाँति प्रज्ञा ग्रहे कि मैं हूँ वही जो चेतना ।  
 अवशेष जो हैं भाव वे मेरे नहीं यह जानना ॥ ७२॥  
 इस भाँति प्रज्ञा ग्रहे कि मैं हूँ वही जो देखता ।  
 अवशेष जो हैं भाव वे मेरे नहीं यह जानना ॥ ७३॥  
 इस भाँति प्रज्ञा ग्रहे कि मैं हूँ वही जो जानता ।  
 अवशेष जो हैं भाव वे मेरे नहीं यह जानना ॥ ७४॥  
 जो सो रहा व्यवहार में वह जागता निज कार्य में ।  
 जो जागता व्यवहार में वह सो रहा निज कार्य में ॥ ७५॥  
 व्यवहार से यह आत्मा घट पट रथादिक द्रव्य का ।  
 इन्द्रियों का कर्म का नोकर्म का कर्ता कहा ॥ ७६॥  
 परद्रव्यमय हो जाय यदि परद्रव्य में कुछ भी करें ।  
 परद्रव्यमय होता नहीं बस इसलिए कर्ता नहीं ॥ ७७॥  
 ना घट करे ना पट करे ना अन्य द्रव्यों को करे ।  
 कर्ता कहा तत्तूरूप परिणत योग अर उपयोग का ॥ ७८॥  
 ज्ञानावरण आदिक जु पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं ।  
 उनको करे ना आतमा जो जानते वे ज्ञानि हैं ॥ ७९॥  
 निजकृत शुभाशुभ भाव का कर्ता कहा है आतमा ।  
 वे भाव उसके कर्म हैं वेदक है उनका आतमा ॥ ८०॥

जब संक्रमण ना करे कोई द्रव्य पर गुण द्रव्य में ।  
 तब करे कैसे परिणामन इक द्रव्य पर-गुण-द्रव्य में ॥ ८१॥  
 कुछ भी करे ना जीव पुद्गल द्रव्य के गुण-द्रव्य में ।  
 जब उभय का कर्ता नहीं तब किसतरह कर्ता कहें? ॥ ८२॥  
 बंध का जो हेतु उस परिणाम को लख जीव में ।  
 करम कीने जीव ने बस कह दिया उपचार से ॥ ८३॥  
 रण में लड़ें भट पर कहे जग युद्ध राजा ने किया ।  
 बस उसतरह द्रवकर्म आतम ने किए व्यवहार से ॥ ८४॥  
 ग्रहे बाँधे परिणामावे करे या पैदा करे ।  
 पुद्गल द्रव्य को आतमा व्यवहारनय का कथन है ॥ ८५॥  
 गुण-दोष उत्पादक कहा ज्यों भूप को व्यवहार से ।  
 त्यों जीव पुद्गल द्रव्य का कर्ता कहा व्यवहार से ॥ ८६॥  
 जो भाव आतम करे वह उस कर्म का कर्ता बने ।  
 ज्ञानियों के ज्ञानमय अज्ञानि के अज्ञानमय ॥ ८७॥  
 ज्ञानमय परिणाम से परिणाम हों सब ज्ञानमय ।  
 बस इसलिए सद्ज्ञानियों के भाव हों सब ज्ञानमय ॥ ८८॥  
 अज्ञानमय परिणाम से परिणाम हों अज्ञानमय ।  
 बस इसलिए अज्ञानियों के भाव हों अज्ञानमय ॥ ८९॥  
 हे भव्यजन तुम जान लो परमार्थ से यह आतमा ।  
 निजभाव को करता तथा निजभाव को ही भोगता ॥ ९०॥

इसलिए यह शुद्धात्मा परजीव और अजीव से ।  
 कुछ भी ग्रहण करता नहीं कुछ भी नहीं है छोड़ता ॥ ९१॥  
 चतुर्गति से मुक्त हो यदि चाहते हो सुख सदा ।  
 तो करो निर्मल भाव से निज आतमा की भावना ॥ ९२॥  
 स्वानुभूती गम्य है जो नियत थिर निजभाव ही ।  
 अपद पद सब छोड़ ग्रह वह नित्य एक स्वभाव ही ॥ ९३॥  
 ज्ञायकस्वभावी चेतनामय जीव जिनवर ने कहा ।  
 तुम जानना उस जीव को ही कर्म क्षय का हेतु भी ॥ ९४॥  
 रागादि विरहित आतमा रत आत्मा ही धर्म है ।  
 भव तरण-तारण धर्म यह जिनवर कथन का मर्म है ॥ ९५॥  
 ज्ञान दर्शन मय निजातम को सदा जो ध्यावते ।  
 अत्यल्प काल स्वकाल में वे सर्वकर्म विमुक्त हों ॥ ९६॥  
 पर का नहीं ना मेरे पर मैं एक ही ज्ञानात्मा ।  
 जो ध्यान में इस भाँति ध्यावे है वही शुद्धात्मा ॥ ९७॥  
 इसतरह मैं आतमा को ज्ञानमय दर्शनमयी ।  
 ध्रुव अचल अवलंबन रहित इन्द्रियरहित शुध मानता ॥ ९८॥  
 अरि-मित्रजन धन-धान्य सुख-दुख देह कुछ भी ध्रुव नहीं ।  
 इस जीव के ध्रुव एक ही उपयोगमय यह आत्मा ॥ ९९॥  
 यह जान जो शुद्धात्मा ध्यावे सदा परमात्मा ।  
 दुठ मोह की दुर्ग्रन्थि का भेदन करें वे आतमा ॥ १००॥  
 निर्वाण पाया इसी मग से श्रमण जिन जिनदेव ने ।  
 निर्वाण अर निर्वाणमग को नमन बारंबार हो ॥ १०१॥

## समाधि का सार

समाधि, मरण नहीं; जीवन है

( दोहा )

पंच परम परमेष्ठी को नमकर बारंबार।  
प्रस्तुत है आनन्दमय यह समाधि का सार॥ १॥  
सहज समाना स्वयं में, ही समाधि की लब्धि।  
सहजानन्दस्वरूप यह, जीवन की उपलब्धि॥ २॥  
जीवन होय समाधिमय, है जीवन का सार।  
मरण समय में भी रहे, इसका ही आधार॥ ३॥

( वीर )

सब द्रव्यों का सहज परिणमन सदा सहज ही होना है।  
तुम्हें नहीं कुछ करना है बस सहज जानते रहना है॥  
जो कुछ भी होना अपने में वह सहजभाव से होना है।  
उसमें भी तो फेरफार का कुछ विकल्प न करना है॥ ४ ॥  
फेरफार की बुद्धि ही तो आकुलता की जननी है।  
अतः हमें कुछ करने की भी व्याकुलता ना करनी है॥  
आकुलता ही परम दुःख यदि हमें निराकुल रहना है।  
करने-धरने का भाव तजो श्री जिनवर का यह कहना है॥ ५ ॥  
इस परम सत्य की सहज स्वीकृति सचमुच सहज समाधि है।  
जिसमें आधी-व्याधि नहीं है और न कोई उपाधि है॥  
ऐसी श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक शान्त निराकुल जीवन की।  
सहज सरल सुखमय परिणति ही अद्भुत परम समाधि है॥ ६ ॥

52

जो कुछ होना सहजभाव से ही तो होता रहता है।  
सब सहजभाव से होने पर कुछ करना शेष न रहता है॥  
कुछ करना-धरना शेष नहीं बस सहज जानते रहना है।  
सहज देखना सहज जानना ही समाधि का गहना है॥ ७॥

सहज समाधि शान्तभाव है सहजानन्द निराकुल है।  
व्याकुलता का लेश नहीं ना व्याकुल है ना आकुल है॥  
परम निराकुल परम शान्त है यह समाधि संजीवन है।  
अरे मरण की बात करो मत यह समाधि तो जीवन है ॥ ८॥

यह समाधि तो जीवन है जीवन की गौरव-गरिमा है।  
साम्यभाव की जननी यह इसकी तो अद्भुत महिमा है॥  
अरे समाधि, मरण नहीं है रे समाधि तो जीवन है।  
सहज समाधि मोह-क्षोभ से रहित परिणमन ही तो है॥ ९॥

मोह-क्षोभ से रहित भाव ही समता है संजीवन है।  
एकमात्र बस वीतरागता ही समाधि का जीवन है॥  
वीतरागता परमधरम है अर अनन्तसुखदायी है।  
वीतरागता परमसमाधि अति आनन्दप्रदायी है॥१०॥

निज आतम में जमना-रमना जिसमें आधि न व्याधी है।  
सबकुछ सहज सहज ही जीवन सचमुच सहज समाधि है॥  
सारा जीवन हो समाधिमय सहजभाव से समता हो।  
परद्रव्यों परभावों में ना अपनापन<sup>१</sup> ना ममता<sup>२</sup> हो॥११॥

कर्त्तापन<sup>३</sup> का बोझा न हो चाह न भोक्तापन<sup>४</sup> की हो।  
साम्यभाव हो, सहजभाव हो, समताभाव सहज ही हो॥  
अरे देह का परिवर्तन हो सहजभाव से इक पल में।  
उसे समाधिमरण कहते हैं जीवन के अन्तिम क्षण में॥१२॥

सभी द्रव्य हैं नित्य निरामय अरु स्वभाव से सदा अटल।  
जीव जीव जड़ जड़ रहते हैं सभी स्वयं में सदा अचल॥  
द्रव्यरूप से नहीं बदलते पर पर्याय बदलती है।  
पर्यायें तो एक समय भी बदले बिना न रहती हैं ॥१३॥

परद्रव्यों की पर्यायों में तुझे नहीं कुछ करना है।  
अरु अपनी पर्यायों में भी अदल-बदल न करना है॥  
पर में, अपनी पर्यायों में जो कुछ जैसा होना है।  
वह अनादि से नक्की है ना उसमें कुछ भी करना है ॥ १४॥

अरे किसी के माथे पर कुछ भी करने का भार नहीं।  
समताभाव न जागेगा जबतक होंगे निर्भार नहीं॥  
समताभाव बिना समाधि भी कभी नहीं हो सकती है।  
और अकर्त्ताभाव बिना निर्भार नहीं हो सकते हैं ॥ १५॥

क्रमनियमितपर्यायों का जबतक श्रद्धान नहीं होगा।  
जबतक श्रद्धान नहीं होगा अरु सम्यक् ज्ञान नहीं होगा॥  
तबतक यह आत्मराम कभी भी रे निर्भार नहीं होगा।  
यदि निर्भार नहीं होगा तो भव से पार नहीं होगा ॥ १६ ॥

अरे शुद्ध उपयोग समाधि जीवन की सम्यक् विधि है।  
और शुद्धपरिणति समाधिमय जीवन की अनुपम निधि है॥  
ज्ञान-ध्यान-आचरण सभी कुछ सहजभाव से होता है।  
यथायोग्य व्यवहार-आचरण<sup>२</sup> भी तो होता रहता है ॥ १७ ॥

१. समयसार गाथा ३०८-३११ तक की आत्मख्याति टीका

२. भूमिकानुसार शुभभाव एवं शुभक्रिया

सहज समाधी मय यह जीवन जीवनभर रह सकता है।  
किन्तु मरण तो अन्त समय में समय मात्र को होता है॥  
सत्-श्रद्धा के साथ समाधी रहे निरन्तर जीवनभर।  
'अरु समाधि के साथ मरण हो' रहे भावना जीवनभर ॥ १८ ॥

रहे प्रवाहित धार निरन्तर नित समाधिमय सरिता की।  
अरे निराकुल जीवन में रे छाप न हो व्याकुलता की॥  
दूर दूर तक दे न दिखाई परछाई आकुलता की।  
भय चिन्ता की अरु विकल्प की शंका की आशंका की ॥ १९॥

रे चाह नहीं, कुछ बात नहीं; माथे पर कोई भार नहीं।  
सब अपने में ही सीमित हैं पर का कोई अधिकार नहीं॥  
सारे संयोग निरर्थक हैं अरु सभी बदलने वाले हैं।  
उनसे कुछ भी संबंध नहीं वे यों ही जाने वाले हैं ॥ २०॥

अगले भव सब नक्की ही हैं उनके चुनने की बात नहीं।  
एवं निदान है आर्त्तध्यान उसको करने की बात नहीं॥  
निश्चित क्रम के अनुसार जहाँ भी जाना होगा, जाऊँगा।  
'भव से होना है पार' बन्धुवर यही भावना भाऊँगा ॥ २१॥

लम्बे जीवन जल्दी मरने की भी है कोई चाह नहीं।  
सहज भाव से जीने से अरु मरने से इन्कार नहीं॥  
सहजभाव से शान्तभाव से मरना-जीना है स्वीकृत।  
जो कुछ जब जैसा होना है सब सहजभाव से अंगीकृत ॥ २२॥

अनुकूलों से अनुराग नहीं, अरु बीती बातें याद नहीं।  
अनाचार तो बहुत दूर अतिचारों की भी बात नहीं।।  
जो कुछ जैसा होनेवाला उससे कोई इन्कार नहीं।  
सब सहजभाव से है स्वीकृत है कोई अन्य प्रकार नहीं।। २३।।

जब केवलज्ञानी ने तेरे भावी के सब भव देखे हैं।  
तब इसका अर्थ साफ ही है भावी भव भी सब निश्चित हैं।।  
उनमें परिवर्तन करने की बातें सब व्यर्थ कल्पना है।  
अरु परिणामों के संभाल की बातें व्यर्थ जल्पना है।। २४।।

अरे जहाँ भी जाना है उसके अनुसार भाव होंगे।  
उन भावों के अनुकूल समय पर कर्मों के बन्धन होंगे।।  
उन कर्मों में उन भावों में ना कोई फेर-फार होगा।  
कुछ भी करने का भार नहीं सब सहज भाव से ही होगा।। २५।।

उक्त तथ्य की सहज स्वीकृति ही समाधि है समता है।  
कुछ भी करने की किसी तरह की ना कुछ भी आकुलता है।।  
जिस साधक में यह समता है वह लौकिक कष्टों में भी हो।  
तो भी वह अपने अन्तर में आनन्द में है आनन्द में है।। २६।।

रे समाधि तो सुखमय है उसमें कष्टों का काम नहीं।  
अद्भुत समाधि है शान्त भाव उसमें अशान्ति का नाम नहीं।।  
कष्टों की कारा दिखे हमें अन्तर की शान्ति नहीं दिखती।  
हम बातें बड़ी बड़ी करते अन्तर की भ्रान्ति नहीं मिटती।। २७।।

अत्यन्त शान्त सुखमय जीवन की यह तो सहज अवस्था है।  
न आकुलता न व्याकुलता यह इकदम सजग अवस्था है।।  
यह तो समाधिमय जीवन है यह ही समाधिमय मरण अहा।  
है यही ज्ञानियों का जीवन अरु इसे समाधीमरण कहा।। २८।।

साधारण सी एक वस्तु जब खो जाती इस जीवन में।  
हम आकुल-व्याकुल हो जाते कुड़ते रहते मन ही मन में।।  
सभी वस्तुओं का वियोग जब एक साथ ही हो जाता।  
अज्ञानमयी इस दुनियाँ में उसको ही मरण कहा जाता।। २९।।

जबतक अपना इन योगों से एकत्व नहीं विगलित होगा।  
इनके वियोग में अरे हमारा चित्त सदा विचलित होगा।।  
जबतक संयोगों से विरक्ति का भाव न होगा जीवन में।  
इनसे लगाव न छूटेगा तो शान्ति न होगी जीवन में।। ३०।।

यदि समाधिमय जीवन है तो मरण समाधीमय होगा।  
यदि जीवन है आकुलतामय तो मरण कहाँ सुखमय होगा।।  
संयोगों से एकत्व तजो ममता छोड़ो संयोगों से।  
कर्त्तापन-भोक्तापन तोड़ो अपनापन जोड़ो अपने से।। ३१।।

अपनापन जोड़ो अपने में अरु अपने में ही जमो रमो।  
अपने में स्वयं समा जावो अपनेमय ही तुम हो जावो।।  
अपने में अपना सबकुछ है हम स्वयं स्वयं ही सबकुछ हैं।  
रे समाधि का क्या करना जब स्वयं समाधिमय ही हैं।। ३२।।

( दोहा )

साधारण सी बात है, सब संयोग-वियोग।  
अरे सहज स्वीकृत करो, यह संयोग-वियोग।। ३३।।  
महिमा समताभाव की, जग में अपरंपार।  
सम्यक् सुखमय शान्ति का, एकमात्र आधार।। ३४।।

## सहजता

( रेखता )

नहीं है जिसमें कोई तनाव, नहीं है जिसमें कोई विकल्प।  
नहीं है जिसमें कोई दोष, नहीं है कोई भी आक्रोश।।  
सहजता जीवन का उल्लास, सहजता निर्विकल्प आनन्द।  
सहजता स्वास और उस्वास, सहजता ही है परमानन्द।। १।।

अरे रे पर को पर स्वीकार, न उनमें कुछ करने का भाव।  
और अपनी पर्यायों को, सुनिश्चित क्रमनियमित स्वीकार।।  
न उनमें फेरफार का भाव, एकदम सरल सहज स्वीकार।  
न उनमें हर्षाहर्ष विभाव, सहजता जीवन का आधार।। २।।

सहजता जीवन का आधार, वस्तु का सम्यक् रूप निहार।  
जगत का सहज परिणमन देख, होय बस उसे सहज स्वीकार।।  
सहजता जीवन का इक लक्ष्य, सहज जीवन ही हो स्वीकार।  
और जीवन का परम पवित्र, ज्ञान-दर्शन का हो व्यापार।। ३।।

जगत का कोई भी परद्रव्य, नहीं होता है इष्ट-अनिष्ट।  
स्वकाल में उदित सहज परिणमन, अरे होता है सदा विशिष्ट।।  
अरे वह भी होता है अचल, नहीं होता उसमें कुछ बदल।  
सभी सम्यग्ज्ञानी जन को, अरे स्वीकृत होता है सहज।। ४।।

जगत का सभी परिणमन अरे, पूर्णतः पूर्व सुनिश्चित है।  
नहीं करना है कुछ भी हमें, क्योंकि वह पूर्ण व्यवस्थित है।।  
अरे इस परम सत्य की सहज, स्वीकृति सहज सहजता है।  
यही है दर्शन-ज्ञान-चरित्र, ध्यान की सहज अवस्था है।। ५।।

ध्यान की सहज अवस्था है, ज्ञान की गौरव-गरिमा है।  
अरे रे जीवन का आनन्द, आत्म की अद्भुत महिमा है।।  
सहजता सहज धर्म का मर्म, धर्म सरिता की तरल तरंग।  
संत साधर्मी का सत्संग, धर्मकाया का उत्तम अंग।। ६।।

सभी के मन में सहज उमंग, और पुलकित हैं सारे अंग।  
बना है अद्भुत आत्मप्रसंग, और मानस में विपुल तरंग।।  
खिले हैं सबके सारे अंग, आत्म-अनुभव की तरल तरंग।  
जगत में सहज सहजता अरे, समाई हैं सबमें सर्वांग।। ७।।

सहजता सब द्रव्यों का धर्म, सहजता का न कहीं अभाव।  
सहजता ना छोड़े कोई द्रव्य, सभी के अपने-अपने भाव।।  
सभी स्वाधीन सहज परिणमं, सहजता जीवन का आधार।  
सहजता की सामर्थ्य अपार, अरे महिमा है अपरंपार।। ८।।

सहजता सब द्रव्यों का भाव, सहजता सबका सहज स्वभाव।  
किसी का हम पर कोई न भार, सभी हैं अपने जिम्मेवार।।  
स्वयं के परिवर्तन का भार, नहीं है हम पर हम निर्भार।  
सहजता का सम्यक् स्वीकार, करे हम सबका बेड़ा पार।। ९।।

करे हम सबका बेड़ा पार, यही है मुक्तिमग का द्वार।  
यही है अद्भुत आत्म शान्ति, यही है परमानन्द अपार।।  
यही है सम्यग्दर्शन-ज्ञान, यही है निश्चय धर्मद्धान।  
यही है मन-वच-काय निरोध, यही है सहज समाधि योग।। १०।।

सहज जीवन है सहज समाधि, न जिसमें आधी-व्याधि-उपाधि।  
समाधि है सुखमय जीवन, मरण का उससे क्या सम्बन्ध।।  
समाधिमय जीवन में देहान्त, सुनिश्चित क्रमनियमित अनुसार।  
यदि हो जावे तो उसको कहा जाता है समाधीमरण।।११।।

सहज समभावमयी जीवन समाधि का है सम्यक् रूप।  
मोह अरु क्षोभ रहित समभाव सहज ही अद्भुत और अनूप।।  
समाधि धारण करके बन्धु अरे जीवन का करें सुधार।  
मरण तो एक समय का कार्य मरण का कैसे करें सुधार?।।१२।।

( रोला )

अरे सहजता जीवन का सर्वांग सत्य है।  
सबका सब कुछ निश्चित है - यह महासत्य है।।  
सबका सबकुछ सहज स्वयं से ही होता है।  
अधिक कहें क्या सब स्वकाल में ही होता है।।१३।।

( कुण्डलिया )

सभी सहज ही परिणमें अपने क्रम अनुसार।  
परिवर्तन संभव नहीं करो सहज स्वीकार।।  
करो सहज स्वीकार चित्त को न भरमावो।  
सहज भाव से अपने आतम में आ जावो।।  
अपने को तो अपना आतम परम शरण है।  
मुक्तिमार्ग में श्रेष्ठकार्य आतम-अनुभव है।।१४।।

-●-

## दो तरह के भगवान

( दोहा )

निज आतम का स्मरण नमन करूँ अरहंत।  
निज आतम के रमण से आवे भव का अन्त।। १।।

( वीर )

हे भव्य! सुनो भगवान दो तरह के होते जगतीतल में।  
पहले रहते जिनमन्दिर में दूजे रहते तनमन्दिर में।।  
पहले पर हैं, दूजे हैं निज; पहले पर्यायरूप भगवान।  
दूजे द्रव्यरूप जिनको कहते हैं कारणपरमात्म।। २।।

अरे आज तक मुक्ति गये जो वे हैं सभी सिद्ध भगवान।  
उनकी ही अरहंत दशा की जिन प्रतिमाओं का निर्माण।।  
और प्रतिष्ठित होकर वे सब बनती हैं जिनदेव महान।  
जिनमन्दिर में राजित होकर वे ही बनती हैं भगवान।। ३।।

उनकी पूजन भक्ति भाव से जो करते उन भव्यों को।  
अरे सातिशय पुण्यबंध होता है जिनवर भक्तों को।।  
सामान्य पुण्य से सब लौकिक सुविधायें तो मिल जाती हैं।  
ए.सी. बंगले ए.सी. मोटर सब सुविधायें जुट जाती हैं।। ४।।

ए.सी. जैसी सुविधायें तो बिल्ली-कुत्तों को मिल जाती।  
हम से भी अच्छी सुविधायें उनको भी तो हैं जुट जाती।।  
उनको तो ये सब सुविधायें बिन श्रम के ही हैं मिल जाती।  
हमको श्रम करने पर ही तो ये सब सुविधायें जुट पातीं।। ५।।



हम स्वयं जुटाते हैं तब ही मिलती हैं ये सब सुविधायें।  
कुत्ते-बिल्ली कुछ करें नहीं फिर भी मिलतीं ये सुविधायें॥  
पर मुक्तिमार्ग में उपयोगी साधन तो प्राप्त नहीं होते।  
अरे सातिशय पुण्योदय से ही वे हमें प्राप्त होते॥ ६॥

देव-शास्त्र-गुरु का अर्चन अर जिनवाणी का श्रवण-मनन।  
और देशना की लब्धि निज आतम का होता चिन्तन॥  
निज आतम का होता चिन्तन साधर्मीजन का सहज मिलन।  
सत्गुरुओं का सत्संग और होते प्रतिदिन जिनवर दर्शन॥ ७॥

अरे सातिशय पुण्य बंधे जिनप्रतिमाओं के अर्चन से।  
अर सब सुविधायें मिलें हमें जिनदर्शन से जिनपूजन से॥  
भले सातिशय पुण्य बंधे पर उससे कर्म नहीं कटते।  
स्वर्गसंपदा भले मिले पर हम भगवान नहीं बनते ॥ ८॥

हम भगवान नहीं बनते न हमको मुक्ति मिलती है।  
भव के सब भोग मिलें लेकिन कर्मों से मुक्ति न मिलती है॥  
कर्मों से मुक्ति न मिलती है पर कर्मबंध ही होता है।  
कर्मों के बंधन से भाई भव-भव में रूलना होता है ॥ ९॥

यदि भगवान तुम्हें बनना निज को देखो निज को जानो।  
निज में ही जमकर रम जावो अर नित ही निज को तुम ध्यावो॥  
अपने में ही अपनेपन से अपने में जमने-रमने से।  
कर्मों से मुक्ति मिलती है निज में अपनापन करने से॥ १०॥

57

निज में अपनापन करने से निज में सर्वस्व समर्पण से।  
रे ज्ञान-ध्यान-श्रद्धा - सभी अपने में अर्पण करने से॥  
अपना ही आतमराम रहे जो इस शरीर के मन्दिर में।  
वह ही दूजा भगवान मुक्ति का कारण जो इस भूतल में॥ ११॥

( रेखता )

अरे कारण परमातम रूप कहा जो अपना आतमराम।  
यही है ज्ञान ध्यान का ध्येय यही है रे दूजा भगवान॥  
इसी के आराधन से प्रभो! बने हम पर्यय में भगवान।  
यही है मेरा असली रूप यही मेरी असली पहिचान ॥ १२॥

अरे मैं ही मेरा भगवान ज्ञान-दर्शन से हूँ परिपूर्ण।  
अनन्तानन्त गुणों का पिण्ड चण्ड सर्वांग और सम्पूर्ण॥  
सभी परद्रव्यों से मैं पृथक् और अपने में ही परिपूर्ण।  
नहीं है मुझमें कोई कमी अरे मैं स्वयं स्वयं में पूर्ण ॥ १३ ॥

देह में रहूँ देह से भिन्न देह जड़ में चेतन सर्वांग।  
देह में ज्ञान नहीं है रंच ज्ञान का केतन<sup>१</sup> मैं सर्वांग॥  
शान्ति का सागर सहजानन्द ज्ञान का पिण्ड और सुखकंद।  
परम आनन्द सहज आनन्द अरे आनन्द और आनन्द ॥ १४ ॥

अरे सम्यक् श्रद्धा का प्रभो कहा जो एकमात्र श्रद्धेय।  
अरे रे परमशुद्धनिश्चयनय का जो एकमात्र है ज्ञेय॥  
अरे रे श्रद्धा का श्रद्धेय, ज्ञान का ज्ञेय ध्यान का ध्येय।  
वही है मेरा आतमराम वही है एकमात्र आदेय ॥ १५ ॥

यही है एकमात्र आदेय यही है एकमात्र श्रद्धेय।  
यही है मंगल उत्तम शरण यही है धर्मध्यान का ध्येय॥  
अरे यह ही आनन्द स्वरूप यही कारणपरमात्म रूप।  
यही है परमभाव का रूप यही है अद्भुत और अनूप॥ १६॥

हमारा मन पापों से बचे इसलिये जिनमन्दिर में जाँय।  
और सामान्य पुण्य से बचें क्योंकि वह भोगों में उलझाय।  
यदी भोगों में तुम उलझे तो उससे होय पाप का बंध।  
भोग से बचो, पाप मत करो और तुम हो जावो निर्बन्ध॥ १७॥

अरे मिथ्यात्वभाव को तजो और तुम पुण्य-पाप से बचो।  
निरन्तर अपने में ही रमो और अपने आत्म को भजो॥  
एक वह ही भजने के योग्य एक वह ही रमने के योग्य।  
उसी से प्रकटे आत्मधर्म उसी से कटते हैं सब कर्म॥ १८॥

तुम्हारा आत्म है भगवान करो उस आत्म का श्रद्धान।  
करो तुम उस आत्म का ज्ञान करो तुम उस आत्म का ध्यान॥  
अरे इतना करने से आप बनेंगे पर्यय में भगवान।  
यही है एकमात्र कर्तव्य यही है अद्भुत कार्य महान॥ १९॥

( दोहा )

निज आत्म भगवान की महिमा अपरंपार।  
निज आत्म के ध्यान से हो आनन्द अपार॥ २०॥  
यह ही निश्चय ध्यान है सम्यग्दर्शन ज्ञान।  
निश्चय रत्नत्रय यही यह ही धर्म महान॥ २१॥

-●-

यही है ध्यान... यही है योग...

( दोहा )

अपनेपन के साथ ही निज आत्म का ज्ञान।  
रमो जमो बस यही है निज आत्म का ध्यान॥ १॥

( रेखता )

अरे निज आत्म को पहिचान आत्म में अपनापन करें।  
अरे अपने आत्म को जान उसी में अपनेपन से जमे॥  
यही है निश्चय सम्यग्दर्श यही है निश्चय सम्यग्ज्ञान।  
रत्न त्रय शामिल हो जाते करो यदि इक आत्म का ध्यान॥ २॥

काय चेष्टा कुछ भी मत करो और कुछ भी ना बोलो बोल।  
और ना कुछ भी सोचो भाई! एक आत्म में रमो अमोल॥  
यही है निश्चय सम्यग्ज्ञान यही है निश्चय सम्यक् ध्यान।  
यही है परम शुद्ध उपयोग यही है अद्भुत कार्य महान॥ ३॥

यही है परम समाधीयोग यही है परमतत्व की लब्धि।  
यही है आत्म की संवित्ति यही है आत्म की उपलब्धि॥  
यही है परम भक्ति का भाव यही है निर्विकल्प आनन्द।  
यही है परम समरसीभाव यही है परमशुद्ध आनन्द॥ ४॥

यही है परम शुद्धचारित्र यही है स्वसंवेदन ज्ञान।  
यही है स्वस्वरूप उपलब्धि यही है परमशुद्ध विज्ञान॥  
यही है दिव्यध्वनि का सार यही है परमतत्त्व का बोध।  
जगत में इसके बिन कुछ नहीं यही एकाग्र चित्त का रोध॥ ५॥

यही एकाग्रचित्त का रोध यही है अपनेपन का बोध।  
 यही है उपयोगी उपयोग यही है योगिजनों का योग।।  
 इसी को कहते हैं सब लोग मिला है यह अद्भुत संयोग।  
 स्वयं को जानो मानो जमो यही है परमतत्त्व का बोध।। ६ ।।  
 स्वयं को जानो, जानो नहीं जानना होने दो तुम सहज।  
 जानने का तनाव मत करो जानते रहो निरन्तर सहज।।  
 अरे करने-धरने का बोझ उतारो हो जावो तुम सहज।  
 जानने के तनाव से रहित जानना होने दो तुम सहज।। ७ ।।  
 जानना होने दो तुम सहज जानने के विकल्प से पार।  
 और तुम हो जावो निर्भार भाड़ में जानो दो तुम भार।।  
 भाड़ में जाने दो तुम भार करो तुम अपने में निर्धार<sup>१</sup>।  
 यदि बनना चाहो भगवान उन्हीं-से हो जावो निर्भार।। ८ ।।  
 उन्हीं-से<sup>२</sup> हो जावो निर्भार उन्हीं-से हो जावो निर्ग्रन्थ।  
 चाहते हो तुम भव का अंत शीघ्र ही छोड़ो जग का पंथ।।  
 सहजता जीवन का आनन्द यही है परमागम का पंथ।  
 चलो तुम परमागम के पंथ शीघ्र आवेगा भव का अंत।। ९ ।।  
 शीघ्र आवेगा भव का अन्त प्रगट होगा आनन्द अनन्त।  
 ज्ञान-दर्शन भी होंगे नंत वीर्य भी होगा अरे अनन्त।।  
 अनन्तानन्द अनन्तानन्द अनन्तानन्द अनन्तानन्द।  
 अनन्तानन्द अनन्तानन्द अरे भोगोगे काल अनन्त।। १०।।

( दोहा )

महिमा आतमध्यान की जिसका आर न पार।  
 आतम आतम में रमे हो जावे भव पार।। ११ ।।

१. सोच समझकर निश्चित करना।

२. उनके समान ही।

## जिसमें मेरा अपनापन है....

( वीर )

सामान्य आतमा तो अनन्त पर मैं तो स्वयं अकेला हूँ।  
 मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण अन-आतम से अलबेला हूँ।।  
 मैं तो केवल वह आतम हूँ जिसमें मेरा अपनापन हो।  
 जिसमें मेरा अपनापन हो जिसमें ही मेरा सब कुछ हो।। १ ।।

यद्यपि अनन्तगुणधारी मैं पर-आतम का गुण एक नहीं।  
 यद्यपि मैं अन्य आतमा सा पर अन्य आतमा कभी नहीं।।  
 यद्यपि असंख्य प्रदेशी हूँ पर का प्रदेश प्रवेश नहीं।  
 परिणमनशील पर द्रव्यों सा पर परणति का अवशेष नहीं।। २ ।।

सबके समान ही गुण पर्यय सबके समान प्रदेशमयी।  
 सबके समान ही सबकुछ है सबके समान चैतन्यमयी।।  
 यद्यपि सब कुछ सबके समान पर पर से भिन्न निराला हूँ।  
 सब रमें निरन्तर अपने में अपने में रमनेवाला हूँ ।। ३ ।।

अपने में अपनापन होना अपने में ही जमना-रमना।  
 अपने में स्वयं समा जाना अपने में तन्मय हो जाना।।  
 है धर्म यही बस इसको ही तो धर्मधुरन्धर<sup>१</sup> धर्म कहें।  
 इसको कहते हैं रत्नत्रय इसमें निज को अर्पण कर दें ।। ४ ।।

इसमें निज को अर्पण कर दें इसको निज का सर्वस्व गिनें।  
 इसको जीवन में अपना लें जीवन को बस इसमय कर दें।।  
 यह जीवन सच्चा जीवन है निज को इसमें अर्पण कर दें।  
 अब अधिक कहें क्या हे भगवन्! समभावों से अर्पण कर दें।। ५ ।।

१. धर्म की धुरा को धारण करने वाले तीर्थकरदेव

शुद्धोपयोग शुधपरिणति को निश्चय रत्नत्रय कहते हैं।  
अर सहचारी शुभभावों को व्यवहार रत्नत्रय कहते हैं।  
तदनुकूल जड़ तन परिणति व्यवहार धर्म कहलाती है।  
पर परमारथ से देखें तो वह धर्म नहीं हो सकती है ॥ ६ ॥

अपने-अपने भावानुसार ज्ञानी के यह सब होता है।  
अपने-अपने भावानुसार यह यथायोग्य फल देता है।  
पर मैं तो अपने शुद्धभाव का एकमात्र अधिनायक हूँ।  
मैं ही मेरा कर्त्ता-धर्त्ता अर मैं ही मेरा ज्ञायक हूँ ॥ ७ ॥

रे मैं ही मेरा ज्ञायक हूँ अर मैं ही मेरा ध्यायक हूँ।  
मैं ही मेरा हूँ ज्ञेय-ध्येय मैं ही मेरा आराधक हूँ।  
मैं ही मेरा आराधक हूँ अर मैं मेरा आराध्य अरे।  
मैं तो बस केवल मैं ही हूँ और साधना-साध्य अरे ॥ ८ ॥

मैं पर परमेष्ठी हूँ ही नहीं निज की परमेष्ठी पर्यायें।  
भी मुझसे अन्य रूप ही हैं; क्योंकि मैं तो पर्याय नहीं।  
मैं द्रव्यरूप हूँ मूलवस्तु मेरा अपनापन मुझमें है।  
मैं तो बस केवल मैं ही हूँ मैं हूँ मैं हूँ बस मैं ही हूँ ॥ ९ ॥

मैं परमशुद्ध निश्चय नय का, मैं परमभावग्राही नय का।  
ही विषय अनोखा अद्भुत हूँ, अर मेरे इस जीवनभर का।।  
निष्कर्ष मात्र बस इतना है बस मैं ही हूँ बस मैं ही हूँ।  
बस मैं ही हूँ बस मैं ही हूँ बस मैं ही हूँ बस मैं ही हूँ ॥ १० ॥

( दोहा )

मैं तो केवल एक ही स्वयं आतमाराम।

अपने में ही नित रमूँ राम आतमाराम ॥ ११ ॥

- ● -

## ना बदलकर भी बदलना....

( हरिगीत )

रे असंयोगीतत्त्व में संयोग कुछ करते नहीं।  
संयोग भी तो सुनिश्चित हैं कहा जिनवरदेव ने।।  
अपने सुनिश्चित योग में वे भी निरन्तर बदलते।  
नित निरन्तर ही बदलना उनका सहज परिणाम है ॥ १ ॥

यद्यपि वे नित्य बदलें निरन्तर बदला करें।  
सुनिश्चित परिणमन उनका स्वयं का सर्वस्व है।।  
तेरे किये कुछ नहीं होता उनके सहज परिणमन में।  
उनके सहज परिणमन में और गमनागमन में ॥ २ ॥

द्रव्य से द्रव्यान्तर ना पलटना है जिसतरह।  
नित बदलना भी उसतरह उनकी सहज सम्पत्ति है।।  
ना बदल कर भी बदलना होता निरन्तर नित्य ही।  
बदलकर भी ना बदलना भी सहज परिणाम है ॥ ३ ॥

बदलकर भी ना बदलना बिना बदले बदलना।  
रे बदलना ना बदलना यह वस्तु का परिणमन है।।  
अपेक्षा को समझना ही एकमात्र उपाय है।  
नहीं समझी अपेक्षा तो उलझना ही नियति है ॥ ४ ॥

यदि चाहते हो सुलझना तो अपेक्षा पर ध्यान दो।  
अपेक्षा समझे बिना तुम पार पा सकते नहीं।।  
स्याद्वादी जैनियों की स्याद्वादी पद्धति।  
को समझना ही समझ लो बस एकमात्र उपाय है ॥ ५ ॥

ना बदलकर बदला करे या नहीं बदले बदलकर।  
बदले न बदले जो भी हो हमको बतायें क्या करें।।  
पर जो भी बदलाबदल हो उसमें हमारा भी चले।  
बस बात इतनी ही है इससे अधिक हम क्या कहें?।।६।।

इस जगत का सब परिणामन इकदम सुनिश्चित जानिये।  
बदलने की भावना इकदम असंभव मानिये।।  
ऐसी असंभव भावना मिथ्यात्व है अज्ञान है।  
जिनदेव का ऐसा कथन यह सभी मिथ्याज्ञान है।।७।।

इक द्रव्य का अन्य द्रव्य में चलता नहीं कुछ रंच भी।  
यह कथन है जिनदेव का इसमें न अन्तर रंच भी।।  
यह अटल सिद्धांत है इसमें किसी का क्या चले?  
है ठीक इस सिद्धांत के अनुकूल अपना मन बने।।८।।

वस्तु के परिणामन में थोड़ा हमारा भी चले।  
यह भावना अज्ञान है अज्ञान से हम सब बचें।।  
इस भावना की पूर्ति तो तेरी कभी होगी नहीं।  
त्याग ऐसी भावना सन्मार्ग पर हम सब चलें।।९।।

पर्याय का परिणामन आया सहज केवलज्ञान में।  
स्वीकारना ही धर्म है यह बात रखिये ध्यान में।।  
यदी हो स्वीकार तो बस पार बेड़ा जानिये।  
अतः अन्तर्भाव से स्वीकार होना चाहिये।।१०।।

( दोहा )

परम सत्य की स्वीकृति अन्तर्मन से होय।

तो इस आतमराम को रे अनंतसुख होय।।११।।

- ● -

## कोई किसी का क्यों करे....?

( हरिगीत )

कोई किसी का क्या करे, कोई किसी का क्यों करे?  
सब द्रव्य अपने परिणामन के जब स्वयं जिम्मेवार हैं।।  
जिस देह में आतम रहे, जब वही अपनी ना बने।  
तब शेष सब संयोग भी अपने बताओ क्यों बने?।।१।।

एक अपना आतमा ही स्वयं अपनेरूप है।  
और सब संयोग तो बस एकदम पररूप हैं।।  
संयोग की ही भावना बस भवभ्रमण का हेतु है।  
और अपनी भावना ही एक मुक्ति सेतु है।।२।।

संयोग बदलें निरंतर इस दुःखमयी संसार में।  
उनको मिलाना असंभव है सुनिश्चित संसार में।।  
संयोग होते हैं सहज<sup>१</sup> पर करोड़ों में एक भी।  
मिल जाय तो मिल जाय रे अत्यन्त दुर्लभ जानिये।।३।।

संयोग मिलना-बिछुड़ना ना है किसी के हाथ में।  
पूरी तरह हैं सुनिश्चित सब ही अनादिकाल से।।  
इस सत्य को स्वीकार करना ही सहज पुरुषार्थ है।  
सहज में ही सहज रहना एक ही परमार्थ है।।४।।

बस एक सुख का मूल है निज आत्म में अपनापना।  
स्वयं को पहिचानना अर स्वयं को निज जानना।।  
स्वयं में ही समा जाना स्वयं में ही लीनता।  
स्वयं के सर्वांग में ही स्वयं की तल्लीनता।।५।।

१. मनोनुकूल संयोगों का मिलना असंभव ही है। सहज रूप से कदाचित् मिल भी जावे तो करोड़ों में एकाध ही मिलता है।

यही सच्चा धर्म है अर यही सच्ची साधना।  
 है आत्मा की साधना अर आत्म की आराधना।।  
 निज आत्मा में रमणता निज आत्मा का धर्म है।  
 निज आत्मा के धर्म का इक यही सच्चा मर्म है।।६।।

सद्धर्म का यह मर्म है सब स्वयं में तल्लीन हों।  
 स्वयं की तल्लीनता से रहित जन भवलीन हों।।  
 भवलीन संसारी सदा भव में भटकते ही रहें।  
 निज आत्मा के भान बिन सुख को तरसते ही रहें।।७।।

ज्ञानमय आनन्दमय यह अमल निर्मल आत्मा।  
 सद्ज्ञान दर्शन चरणमय सुख-शान्तिमय यह आत्मा।।  
 जो शक्तियों का संग्रहालय गुणों का गोदाम है।  
 आनन्द का है कंद अर आराधना का धाम है।।८।।

आराधना का धाम है सुख साधना का धाम है।  
 और अपनी आत्मा का एक ही ध्रुवधाम है।।  
 एक ही ध्रुवधाम है बस एक ही सुखधाम है।  
 अध्रुव सभी संयोग बस निज आत्मा ध्रुवधाम है।।९।।

ध्रुवधाम में एकत्व रे ध्रुवधाम की आराधना।  
 ध्रुवधाम में सर्वस्व अर ध्रुवधाम की ही साधना।।  
 साधना आराधना आराधना अर साधना।  
 हे भव्यजन ! नित करो अपने आत्म की आराधना।।१०।।

( दोहा )

आतम ही ध्रुवधाम है आतम आतमराम।  
 आतम आतम में रमें हूँ मैं आतमराम।।११।।

- ● -